ॐ

भक्ति

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादकः—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती

पौष संवत् १९८४

वार्षिक मूल्य २)

एक प्रतिका ।)

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देनेवाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्तिके नामसे होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास को "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

नं०	विषय	पृष्ठ
१.	मंगलाचरण	१०५
२.	हमारे कुल में तरुण पुरुष नहीं मरते [ले० देसाई बालजी गोविन्दजी]	१०८
३.	तृष्णा [ले० श्रीमती सूरज देवी श्रीभगवद्भक्ति आश्रम]	११०
४.	मानवधर्म सार	११५
५.	मैत्रायणी उपनिषद्	१२३
६.	आओ! आओ!! पुनः आओ!!! [ले० राज रानी मुग्धी विदुषी साहित्य प्रभाकर]	१२७
७.	मनो वृत्तियों का निग्रह [ले० पं० ज्ञानचन्द्र शास्त्री कनखल]	१२७
८.	उपदेश संग्रह [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी]	१३०
९.	उद्देश्य सौष्ठव [ले० श्री० पं० किशोरी दास जी वाजपेयी "शास्त्री" गुरुकुल कांगड़ी]	१३१
१०.	भजन	१३३
११.	संसार समाचार	१३६

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः।"

वार्षिक चन्दा २) एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष २ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, पौष पूर्णिमा सं० १९८४। { अङ्क ४

॥ मंगलाचरणम् ॥

रुद्राक्ष कंकणलसत् करदण्डयुग्मं, भालान्तराल विधुभस्मधरं त्रिपुण्ड्रम्।
पञ्चाक्षरं परिपठन् वरमन्त्रराजं, ध्येयं सदापशुपतिं शरणं व्रजेऽहम् ॥१

रुद्राक्ष के कंकण से शोभित हैं दोनों हाथ जिनके, ललाट पटल में चंद्रमा, भस्म और त्रिपुण्डतिलक के धारण करने वाले, और पांच अक्षर वाले श्रेष्ठ मंत्रराज को पढ़ते हुए, सर्वदा ध्यान करने योग्य, ऐसे पशुपति महादेव की मैं शरण को प्राप्त होता हूं ॥ १ ॥

विघ्नध्वान्त निवारणैकतरणिर्विघ्नाटवी हव्यवाड्,
विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्ग गिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवो,
विघ्नाघौघघनप्रचण्ड पवनो विघ्नेश्वरः पातु नः ॥ २ ॥

विघ्न रूप अन्धकार के निवारण के लिये सूर्यरूप, विघ्नरूप गहन वन के लिये अग्निरूप, विघ्नरूप सर्पकुल के अभिमान खण्डन के लिये गरुड़ रूप, विघ्नरूपी हाथी के लिये सिंहरूप, विघ्नरूपी ऊंचे पर्वत के भेदन केलिये वज्ररूप, विघ्नरूप समुद्रशोषण के लिये बाडवाग्निरूप , विघ्न तथा पापों के समूह रूपी मेघों के लिये प्रचण्ड पवन रूप, ऐसे विघ्नराज श्री गणेश जी हमारी रक्षा करें ॥ २

नमोस्तु सूर्याय सहस्र रश्मये, सहस्रशाखान्वित सम्भवात्मने ।
सहस्रयोगोद्भवभाव भागिने, सहस्र संख्यायुगधारिणे नमः ॥ ३

सहस्रों हैं किरण जिनके, तथासहस्रों शाखाओं से सम्भव है आत्मा जिनकी, तथा सहस्रों योगों से उत्पन्न भावों को भोगने वाले, सहस्रों युगों को धारण करने वाले श्रीसूर्य नारायण को नमस्कार है॥ ३॥

जातुपार्थयते न पार्थिव पदं नैन्द्रे पदे मोदते,
संधत्ते नवयोगसिद्धिषु धियं मोक्षं च ना कांक्षति ।
कालिन्दीवनकीमनि स्थिरतडिन्मेघद्युतौ केवलं,
शुद्धे ब्रह्मणि वल्लवीभुजलतावद्धे मनो धावति ॥ ४ ॥

यमुना के कुञ्जमें स्थिर तड़ित मेघ सदृश है कान्ति जिनकी और लतावत् आबद्ध हैं भुजलता जिनकी ऐसे शुद्ध ब्रह्म कृष्ण भगवान् में जिनका मन चला जाता है वह न तो कभी राज्यपद की प्रार्थना करता है, न इन्द्र पद में आनन्द मनाता है, न नव सिद्धियों में बुद्धिको लगाता है और न मोक्ष पद की ही इच्छा करता है॥ ४ ॥

ज्ञातं काणभुजं मतं परिचितैवान्वीक्षिकी शिक्षिता,
मीमांसा विदितैव सांख्यसरणियोगे वितीर्णा मतिः ।
वेदान्तः परिशीलितः सरभसं किन्तु स्फुरन्माधुरी,
धारा काचन नन्दसूनुमुरली मच्चित्तमाकर्षति ॥ ५ ॥

कणाद के मतको भी जान लिया, और तर्क शिक्षासे भी परिचित हो चुका, मीमांसा शास्त्र को भी जान लिया सांख्ययोग में पारगामी मति भी है और सर्वस्व वेदांत शास्त्र का भी परिशीलन किया किंतु नंद सूनुकी मधुरमाधुरी मुरली जैसी मेरे चित्तको आकर्षित करती है ऐसा यह नहीं करते ॥ ५ ॥

कापायान्न च भोजनादिनियमान्नो वा वने वासतो,
व्याख्यानादथवा मुनिव्रतभराच्चित्तद्रवः क्षीयते ।

किन्तुस्फीत कलिन्दशैलतनयातीरेषु विक्रीडतो,
गोविन्दस्य पदारविन्द भजनारंभस्य लेशादपि ॥ ६ ॥

न तो कषाय वस्त्र से, न भोजनादिके नियम से, न धन के वाससे, न व्याख्यान से और न मुनियों जैसे व्रत धारण करने से चित्तका उद्वेग क्षीण होता है जितना शैल सुता श्वेत यमुना के तीर पर क्रीड़ा करते हुए गोविन्द के पदारविंद के भजन से क्षीण होता है॥ ६ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषां हृदिस्थितो भगवान्मङ्गलायतनो हरिः ॥ ७ ॥

उन्हीं का लाभ होता है और उन्हीं की जय होती है। जिनके हृदय में मंगलायतन भगवान स्थित हैं उन का पराजय कहां ?॥ ७ ॥

सर्वदा सर्व कार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थितो भगवान्मङ्गलायतनो हरिः ॥ ८ ॥

जिनके हृदय में मंगलायतन भगवान स्थित हैं उनके सर्वदा सम्पूर्ण कार्यों में मंगल रहता है॥ ८ ॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ ९ ॥

जिसने पूर्वमें ब्रह्म को उत्पन्न किया है और उसके लिये वेदों का उपदेश किया है मैं मुमुक्ष आत्मा-बुद्धि के प्रकाशक देव उस की शरण को प्राप्त होता हूं ॥ ९ ॥

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेता केवलोनिर्गुणश्च ॥ १० ॥

एक देव सम्पूर्ण भूतों में गूढ है, सर्व व्यापी है, सर्व भूतों की आत्मा है, कर्माध्यक्ष है, सर्वभूतों का निवास स्थान है, साक्षी है केवल है, और निर्गुण है ॥ १० ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥ ११ ॥

तुम ही माता हो, तुम ही पिता हो, तुम ही बंधु हो, तुम ही सखा हो, तुम ही विद्या हो, तुम ही ऐश्वर्य हो और हे देवों के देव तुम ही सर्वस्व हो ॥ ११ ॥

हमारे कुलमें तरुण पुरुष मरते नहीं।

(ले० देसाई बालजी गोविन्दजी)

नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

राजा ब्रह्मदत्त वाराणसीमें राज्य करते थे। उस समय काशी राष्ट्र के किसी ग्राम में एक ब्राह्मण रहता था। वह बहुत सदाचारी था। इस लिए उसे सभी धर्म्मपाल कहते थे। उस के घर का नौकर भी दान देता, शील रखता तथा उपवास करता था।

धर्म्मपाल के घर पुत्र जन्मा। पुत्र बड़ा हुआ इस लिए पिता ने उसे एक सहस्र मुद्रा देकर तक्षशिला को पढ़ने के लिए भेजा। वहां जाकर एक दिग्विजयी आचार्य के पांचसौ शिष्यों में मुख्य बन कर रहा।

अब आचार्य का एक लड़का मर गया। इस लिए आचार्य, उन के सगासम्बन्धी और सभी विलाप करने लगे, सिर्फ एक धर्म्मपाल कुमार नहीं रोता था। स्मशान से लौटने पर सभी शिष्य कह रहे थे, "ऐसा सदाचारी जवान बूढ़े माता पिता को छोड़ कर चलता बना।" इस पर धर्म्मपाल कुमार बोला "सचमुच क्या तुम उसे तरुण कहते हो? तरुणावस्था में ही वह क्यों मरा? जवानी में मरना ठीक नहीं।"

दूसरे ने कहा "क्या तू नहीं जानता कि मरना तो मनुष्य का स्वभाव ही है?"

"जानता हूं। पर जवानी में नहीं, बूढ़े होकर मरना ठीक है।

"धर्म्मपाल, तुम्हारे घर में कोई मरता नहीं है क्या?

"बचपन में कोई नहीं मरता सब बुढ़ापे में मरते हैं।"

"क्या यह तुम्हारे कुल की रीति है?"

"हां।"

शिष्यों ने यह बात आचार्य से कही। आचार्य ने धर्म्मपाल को बुला कर पूछा, "सत्य ही, तात धर्म्मपाल। तुम्हारे कुल में बचपन में कोई नहीं मरता?"

"सच महाराज!"

आचार्य ने विचारा, "यह तो भारी आश्चर्य है। इस के बाप के पास जाकर पूछताछ करूं, अगर यह बात सच्ची हो तब इसी के जैसा मैं भी धर्म्म पालूंगा।"

यह विचार कर सात आठ दिनों बाद धर्म्मपाल को बुला कर कहा, "देखो मैं प्रवास में जाता हूं। जब तक मैं लौट न आऊं तब तक तुम इन शिष्यों को पढ़ाना।"

बाद में आचार्य ने बकरे की कुछ हड्डियां मंगाईं। उन्हें धो धा कर सुवासित किया और अपनी झोली में डाल लिया। और एक छोटे लड़के को साथ लेकर तक्षशिला से काशी को रवाना हुए।

धर्म्मपाल के गांवमें पहुंच कर वहां धर्म्मपाल का घर पूछ पाछ कर ढूंढ निकाला और दरवाजे के आगे जाकर खड़े हुए।

ब्राह्मण के जिस नौकर ने आचार्य को पहले पहल देखा, उसने आकर उन के हाथ से छाता लिया, जूता संभाला और ब्राह्मण के छोटे लड़के ने उन के हाथ में से झोली ले ली।

आचार्य ने नौकर से कहा, "जाकर कुमार के पिता से कहो कि आप के पुत्र धर्म्मपाल कुमार के आचार्य द्वार पर खड़े हैं।

नौकरने जाकर ब्राह्मण को खबर दी। ब्राह्मण

वेग से बाहर आया और, "इधर पधारिये" कह कर आचार्य को घर में लाया, ऊंचे आसन पर बैठाया और पग पखार आदि की सक्रिया की।

आचार्य ने खा पी चुकने के बाद ब्राह्मण से कहा, "हे ब्राह्मण! आप का लड़का धर्म्मपाल कुमार तीन वेद और अठारह कला का पारगामी हुआ पर अकस्मात् मर गया। यह संसार ही ऐसा है। इस लिए शोक मत कीजिए, धीरज धरिए।"

ब्राह्मण ने ताली बजाई और खिलखिला कर हंस पड़ा।

"हंसे क्यों, भूदेव?"

"मेरा पुत्र नहीं मर सकता, दूसरा कोई मर गया होगा।"

"हे ब्राह्मण! तुम्हारा ही पुत्र मर गया है। यह देखो उस के फूल" यह कर ब्राह्मण को हड्डियां दिखायीं।

"यह तो बकरे या कुत्ते की हड्डियां होंगी। पर मेरा लड़का कदापि नहीं मर सकता, हमारे कुल में सात पीढ़ी से कोई बचपन में मरा ही नहीं है। आप झूठ बोलते हैं।" यह कह कर ब्राह्मण फिर हंसा और ताली बजाने लगा।

यह देख कर आचार्य तो स्तब्ध ही हो गये और बोले, "हे ब्राह्मण, आप के कुल में तरुण पुरुषों के न मरने का कारण क्या है? आप ऐसा कौन ब्रह्मचर्य या व्रत पालते हैं कि जिसके प्रताप से-

किं ते वतं किं पन ब्रह्मचर्यम्।
किस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको।
अक्खाहि मे ब्राह्मण एतमत्थम्।
कस्मा हि तुम्हं दहरा न मीयरे॥

आप ऐसे सुखी हैं?"

ब्राह्मण ने जवाब दिया

धम्मं चराम न मुसा भणाम।
पापानि कम्मानि विवज्जयाम।
अनारियं परिवज्जेमु सब्बम्।
तस्मा हि अम्हं दहरा न मीयरे॥

"हम धर्म का आचरण करते हैं। झूठ नहीं बोलते। पाप कर्ममात्र से दूर रहते हैं। इसलिए हमारे कुटुम्ब में तरुण पुरुष नहीं मरते।

सुणोम धम्मं असतं सतं च।
न चापि धम्मं असतं रोचयाम।
हित्वा असंते न जहाम संते। तस्मा०॥

"हम सज्जन और दुर्जन दोनों की बातें सुनते हैं मगर दुर्जन के प्रति उपेक्षा करते हैं और सज्जन का संग कभी नहीं छोड़ते। इस लिए०

पुब्बे च दानं सुमना ददाम।
ददं पि चे अत्तमन्ता भवाम।
दत्वापि चे नानुतप्पाम पच्छा। तस्मा०॥

"दान देने का विचार करते हुए हम प्रसन्नचित्त रहते हैं, दान करते हुए भी प्रिय बचन बोलते हैं, कड़वा मुंह नहीं करते और दान देनेके बाद पछताते नहीं इसलिए,

समणे मयं ब्राह्मणे अद्धिके च।
वनिब्बके याचनके दलिद्दे।
अन्नेन पानेनऽभितप्पयाम। तस्मा०॥

"श्रमण, ब्राह्मण, प्रवासी, याचक, दरिद्र, इत्यादि सब को अन्न- जल से तृप्त करते हैं। इसलिए०

मयं च भार्या नातिक्कमाम।
अम्हे च भार्या नातिक्कमन्ति।
अञ्ञत्रताहि ब्रह्मचर्यं चराम। तस्मा०॥

"हम अपनी स्त्रियों के साथ पतिव्रत का पालन करते हैं, और हमारी स्त्रियां हमारे साथ पतिव्रत पालती हैं। परन्तु हम को माता के समान है। इसलिए०

एतासु वा जायरे सुग्गवासु।
मेधाविनो होन्ति पहूतपञ्ञा।
बहुस्सुता वेदगुणा च होन्ति। तस्मा० ॥

"इन सती स्त्रियों को जो पुत्र होते हैं वे बुद्धिशाली, प्रज्ञावान, बहुश्रुत और वेद जाननेवाले होते हैं। इसलिए०

माता पिता च भगिनी मातरो च।
पुत्ता च दारा च मयं च सब्बे।
धम्मं चराम परलोकहेतु। तस्मा० ॥

"मा, बाप, भाई, बहिन, पुत्र, स्त्री, हम सब निजधाम पाने की आशा से धर्म का आचरण करते हैं। इसलिए०

दासा च दस्सो अनुजीविनो च।
परिचारिका कम्मकरा च सब्बे।
धम्मं चरन्ति परलोकहेतु। तस्मा० ॥

"हमारे घर के दास दासी, नौकर चाकर, परिचारिका, कर्मकर, सभी सदाचारी हैं। इसलिए०

धम्मो हवे रक्खति धम्मचारिम्।
धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति।
एसा निसंसो धम्मे सुचिण्णे।
न दुग्गतिं गच्छति धम्मचारी॥

"धर्म धर्मचारी की रक्षा करता है। आचरित धर्म मनुष्य को सुखकर होता है। धर्माचरण का यह फलादेश है कि धर्मचारी दुर्गति नहीं पाता।

धम्मो हवे रक्खति धम्मचारिम्।
छत्तं महन्तं विय वस्सकाले।
धम्मेन गुत्तो मम धम्मपालो।
अञ्ञम्म सट्ठीनि सुखी कुमारो॥

"वर्षा ऋतु में बड़े छाते जैसा धर्म धर्मचारी की रक्षा करता है। मेरे धर्मपाल को धर्म की रक्षा है ये हड्डियां किसी दूसरे की हैं। और कुमार तो भला चंगा है। भूखा नहीं, प्यास नहीं, वह तो चैन कर रहा है।

तृष्णा।

(ले० श्रीमती सूरजदेवी भगवद्भक्ति आश्रम)

मनुष्य पहिले दरिद्रावस्थापन्न होने पर शत रुपों की इच्छा करता है। सौ रुपये मिलने पर हजार (सहस्र) की तृष्णा होती है सहस्र प्राप्त होने पर लक्ष की इच्छा होती है परंतु लक्ष पर संतुष्ट न होकर राज्य पाने की तृष्णा बढ़ती है। परन्तु हाय तृष्णे! तू फिरभी तृप्त नहीं होती। मनुष्य राज्य पानेने पर भी स्वर्ग के आधिपत्य की तृष्णा में डूबता है इस विषय की पाठकों को हम एक कथा सुनाते हैं।

कोई अति दरिद्र ब्राह्मण अपनी दरिद्रता के कष्टों से दुःखित हो एक नदी के किनारे बैठ कर वरुण देवता की तपस्या करने लगा। वरुण देव ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि आज से तेरी भोजन विषय की चिन्ता मिट जायगी और तूझे दारिद्रता से छुटकारा मिल जायगा। ब्राह्मण अति प्रसन्न हो घर पर आकर क्या देखता है कि घर अन्न वस्त्रादि से परिपूर्ण है ब्राह्मणने वरुण से वर पाने की कथा अपनी स्त्री को भी सुनाई। स्त्री वर की कथा सुनकर प्रसन्न तो हुई परन्तु तत्क्षण उसके तृष्णा का अंकुर जम आया वह बोली कि जब तुम पर वरुण देव

प्रसन्न हुये तब तुम वरदान मांगना भूल गये। अभी किनारे पर फिर जाओ और वरुण देव से प्रार्थना करना कि अन्नादि तो दिया, परन्तु हम से तो टूटे झोपड़े में नहीं रहा जाता एक उत्तम घर और दो। ब्राह्मण स्त्री के कहे अनुसार नदी के किनारे पर आया और घर के लिये प्रार्थना की। वरुण ने प्रसन्न होकर कहा कि तेरी इच्छानुसार तेरा घर हो जायगा। ब्राह्मण घर गया और देखा तो झोपड़ी की जगह उत्तम मकान पाया। स्त्री पुरुष दोनों ने रात्री आनंद पूर्वक उत्तम मकान में व्यतीत की। परन्तु तृष्णा ने फिर जोर दिया। स्त्री कहने लगी यह मकान तो ईंटों का है हवा, तथा आंधी के प्रबल झोंकों को न सह सकेगा अतः वरुण देव से प्रार्थना करके मजबूत पत्थर का मकान मांगो। तब ब्राह्मण ने वरुण देव से प्रार्थना की कि हे वरुण देव! पत्थर का मकान दीजिये। वरुण ने तथास्तु कहा ब्राह्मण घर आकर देखता है तो पत्थर का मजबूत मकान बना हुआ है। परन्तु तृष्णा स्त्री में प्रवेश कर गई थी इतने ऐश्वर्य से भी इसे संतोष नहीं हुआ। और मखमल की अच्छी शैय्या पर भी रात को नींद नहीं आई। प्रातःकाल अपने पति से बोली कि मजबूत मकान होते हुये भी हम सुरक्षित नहीं हैं वरुण देव से एक दृढ दुर्ग और मांगलाओ। दुर्ग के बिना इतने धन, वैभव, खाद्य पदार्थ की रक्षा कैसे होगी, कोई आकर लूट ले जायगा। ब्राह्मण फिर नदी पर गया और वरुण से प्रार्थना की कि हमें एक दृढ़ दुर्ग और दीजिये। वरुण ने तथास्तु कहा। ब्राह्मण ने घर पर आकर अपने मकान को एक दृढ़ दुर्ग के अन्दर देखा। परन्तु हाय तृष्णे! जिसके हृदय में तूने घर कर लिया उसे शांति सन्तोष कहां? ब्राह्मणी ने कहा दुर्ग, मकान, धन, ऐश्वर्य सब कुछ प्राप्त हुआ परन्तु राज्य बिना सब फीका है और राज्य भी मुझे चक्रवर्ती चाहिये। ब्राह्मण भी तृष्णा दुष्टा से रहित न था अतः वह नदी पर गया और प्रार्थना की कि हे देव! चक्रवर्ती राज्य दीजिये। वरुण ने तथास्तु कहा। ब्राह्मण, ब्राह्मणी चक्रवर्ती राज्य पा सुखी नहीं हुये क्योंकि तृष्णा रूपी सर्पिणी ने उन्हें डस रक्खा था। हा तृष्णा! तुझे धिक्कार है तू जिसके पीछे पड़ती है उसका सर्वनाश किये बिना नहीं छोड़ती। बस ब्राह्मण ब्राह्मणी का भी तृष्णा वश सर्व नाश का समय आगया। उनकी इच्छा हुई कि हम चक्रवर्ती राज्य पाकर के सुखी नहीं हैं। किंतु हम सूर्य, चन्द्र, तारों के ऊपर भी आधिपत्य जमावें उन पर भी हमारी ही सत्ता रहे। ऐसी लालसा मन में धर नदी पर जा वरुण से प्रार्थना की कि हे देव मेरी मनो कामना पूर्ण करो। वरुण ने कहा तेरी सम्पूर्ण समृद्धि का क्षण में ही नाश हो जायगा। ब्राह्मणने आकर देखा तो सम्पूर्ण सम्पत्ति स्त्री सहित अग्नि में जल रही है। ब्राह्मण फिर वही दरिद्री का दरिद्री ही रहा। तृष्णा किस का नाश नहीं करती सबका करती है "तृष्णा क्षय स्वर्ग पदं किमस्ति" शिष्य ने पूछा हे गुरू! स्वर्ग की प्राप्ति किससे होती है तो गुरू उत्तर देता है कि तृष्णा का क्षय ही स्वर्ग पद है।

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः
जीर्यते चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायते ॥

मनुष्य के जीर्ण होने से बाल जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होने से दांत जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होने से आंख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं, परन्तु एक तृष्णा तरुण होती जाती है।

यौवनं जरया ग्रस्त मारोग्यं व्याधिभिर्हितम् ।
जीवितं मृत्यु रभ्येति तृष्णैका निरुपद्रवा ।

जवानी बुढ़ापे से, आरोग्यता व्याधियों से ग्रसित है, पर तृष्णा को किसी उपद्रव का डर नहीं। सम्पूर्ण दुनिया तृष्णा के फेर में पड़ी है। क्या गरीब क्या अमीर गरीब की अपेक्षा धनी अधिक तृष्णा से ग्रसे हुये हैं।

किसी कवि ने कहा है।

खोदत डोल्यो भूमि गडीहु न पाई सम्पति ।
धींकत रह्यो पखान कनक के लोभ लगी मति॥
गयो सिन्धु के पास तहां मुक्ता हु न पायो ।
कौड़ी कर नहीं लगी नृपन को शीश नवायो॥
साधे प्रयोगश्मशान में भूत प्रेत वैताल सजि ।
कितहुं भयो नवांछित कछू अबतो तृष्णा मोहितजि

भर्तृ हरि जी ने कहा है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥
कालो न याता वयमेवयाता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥

विषयों को हमने नहीं भोगा, किन्तु विषयों ने हमारा ही भुगतान कर दिया, हमने तप को नहीं तपा, किन्तु तपने हमें ही तपा दिया, काल नहीं व्यतीत हुआ, किन्तु हम ही बीत गये। तृष्णा का बुढ़ापा नहीं आया, किन्तु हमारा ही बुढ़ापा आगया ॥

तृष्णा अनेक ऐश्वर्य होते हुये भी अशान्ति और नरक का अनुभव कराती है कितना ही सुख प्राप्त हो परन्तु तृष्णा से ग्रसित को कभी सुख नहीं मिलता तृष्णा ही जीव को अनेकानेक जन्मों में भटकाती फिरती है। तृष्णा सब दुःखों का मूल है। जिसने संतोष रूपी अमृत पीलिया है और तृष्णा रूपी सर्पिणी का त्याग कीया है वही सुखी है। कैवल्य पद की प्राप्ति भी तृष्णा क्षय से ही होती है यह तृष्णा ही जीव को अनेक भांति के कष्टों में फंसाती है यथाः-

तृष्णा बन्धन जानिये तृष्णा क्षय है मोक्ष ।
बन्ध मोक्ष होते नहीं शुद्धात्मा अपरोक्ष ॥

तृष्णा ही मनुष्य को बन्धनों में जकड़ने वाली है अतः आत्मकल्याणार्थ तृष्णा का त्याग करना चाहिये इतिहासों में भी तृष्णा त्यगी ही सुखी हुआ है। राज्य धन, स्त्री आदि के प्राप्त होने पर और तृष्णा रोग के लगे रहने पर सुख नहीं प्राप्त होता यथाः-

ना सुख दारा सुत महल ना सुख भूप भये ।
साधु सुखी सहजो कहे तृष्णा रोग गये ॥

मनुष्य की विपत्तियों का मुख्य कारण तृष्णा ही है। हा ! तृष्णा पिशाचिनी ! तेरे संग ने सर्वथा अनर्थ ही कीया है। तेरे कारण अनेक जन्मों में दुःख ही दुःख पायाहै।

हो मातु से उत्पन्न ज्यों बिच्छु उसे ही खाय हैं।
त्योंही तुझे जन्म दे उसको हि तू खाजाय है।

जैसे कांटे की बेल बढ़ती है इसी प्रकार तृष्णा फैलती है सन्तोष को नष्ट कर दिन २ अशान्ति प्राप्त करती है मकड़ी की तरह जाल फैला कर अपने उत्पत्ति कर्ता मनुष्य को ही भक्षण कर जाती है।

तू भली नहीं डायन कभी देखी किसी ने है कहीं।
तू हर किसी को लगी सुर, सिद्ध मुनि छोड़े नहीं।
ज्यों काठ में हो घुन लगा, भीतर ही भीतर नाशता
त्यों खागई तू सर्व को, केवल ऊपर ही भासता ॥

तृष्णा ही महामोह उत्पन्न करने वाली है। तृष्णा ही मनुष्य को दीन बनाने वाली है। मनुष्य अपने निर्वाह अनुसार सामग्री प्राप्त करके शान्ति पूर्वक ईश्वर भजन करता हुआ जीवन मार्ग को तय कर सक्ता है। परन्तु जहां तृष्णा ने डसा बस फिर ऐसा नशा चढता है कि जीवन को तमोमय कर परलोक तक का मार्ग नष्ट कर मनुष्य तृष्णा में लिपटा हुआ ही जीवन की बलि दान देदेता है।

"कोरा दरिद्रो हि विशाल तृष्णा"।

प्रश्न दरिद्र कौन है। उत्तर विशाल तृष्णा वाला जिसमें जितनी अधिक तृष्णा होती है वास्तव में वही अधिक दरिद्री है गरीब को सौ पचास की तृष्णा है तो अमीर को सहस्रों लखों की तृष्णा है। नहुष राजा इन्द्र होकर तृष्णा के अधीन हुआ तो फिर कर मृत्यु लोक में अजगर जन्म पाया। यदि सन्तोष धारण कर देवों का आधिपत्य करता तो क्यों शापभ्रष्ट होता परन्तु बलिहारी तृष्णा की कि जो देवताओं के अधिपों पर भी अपना आधिपत्य जमाये हुये है। दुनियां में लोग जिसके पास धन नहीं होता उसे दरिद्री कहते हैं। पर वास्तव में दरिद्री कोई और ही है जितना अधिक विशेष धनी होगा उतनी ही अधिक तृष्णा वाला होगा और फिर दुःखी होगा। धन के इकट्ठे करने की तृष्णा में दुःखी फिर उसकी रक्षामें दुःखी और यदि दैवयोग से नष्ट होगया तो दुःखी हुआ और दरिद्री हुआ। इसीलिये शास्त्र में तृष्णा वाले को दरिद्री कहा है न कि धन रहित को।

एक साधु था। उसका यह नियम था कि वह दिन भर मांगता और जो कोई उसको कुछ भोजन पैसे आदि देजाता तो वह खाने की वस्तु कुछ खालेता और बची हुई को बांट देता तथा पैसे को भी सबको बांट देता। और जो गरीब कंगाल दीखते उनकी तरफ पैसे फैंक देता था। बहुत दिन का शहर में रहने वाला होने से उसे सब जानते थे। "कंगालों को पैसे बांटने वाला साधु" इस नाम से प्रसिद्ध होगया। एक दिन उसके स्थान के पास से कोई साहूकार गुज़रा तो साधु ने उसकी तरफ देखा और चार पैसे उसकी तरफ फैंक दिये। साहूकार ने भी साधु को पैसे फैंकते देखा, और वह आश्चर्य में भर कर साधु के पास आ दंडवत प्रणाम कर बोला कि "महाराज ? मैंने सुन रक्खा है कि आप कंगालों को पैसे बांटते हैं, आपने मेरी तरफ पैसे क्यों फैंके ? क्या मैं भी कंगाल हूं। मैं तो बहुत धनी साहूकार हूं?" साधु ने कहा "साहूकार! हमारा न्याय और विचार तेरे न्याय और विचार से कुछ और ही प्रकार का है! तू अपने को साहूकार मानता है सब लोग भी तुझे साहूकर धनी मानते हैं। परंतु मेरी दृष्टि में तू साहूकार तथा ऐश्वर्य वाला नहीं है जिसमें तृष्णा होती है मैं उसे कंगाल समझता हूं। गरवों को दो चार पैसे की तृष्णा होती है, तुझे लाखों करोड़ों रुपयों की तृष्णा है। इसलिये मेरे विचार से तू महातृष्णा वाला होने से महादरिद्री कंगाल है। इस प्रकार तुझे कंगाल समझ कर मैंने तेरी तरफ पैसे फैंके थे। साहूकार धर्म निष्ठ था, साधु के युक्ति पूर्वक वचन सुनकर चला गया और शनैः शनैः तृष्णा को कम करने लगा। अपनी आवश्यकता से

अधिक सामिग्री की आयोजना करना और विशेष चिंता करना ही तृष्णा है। मनुष्य का कुछ ऐसा स्वभाव सा पड़ गया है कि पहिले तो इच्छा करता है कि बस थोड़ा ही धन मिल जाय तो अच्छा परन्तु जब कुछ मिल जाता है। तो और कुछ प्राप्त हो ऐसी इच्छा करता है। उसके प्राप्त होने पर भी और कुछ मिल जाय यह इच्छा लगी ही रहती है। तात्पर्य यह कि सन्तोष नहीं आता। अधिक २ की ही लगी रहती है। बस यही तृष्णा का स्वरूप है। इतना और मिल जाय बस इसी में शरीर का अन्त आजाता है। और अपने जीवन का लाभ न लेकर तृष्णा रूपी रस्सी से जकड़ा हुआ अनेकानेक जन्मों में भटकता फिरता है। फिर जब कभी भगवान् की दया होती है तो सदुपदेश दाता सद्गुरु की प्राप्ति होती है। वे जब तृष्णारज्जू को सन्तोष रूपी खड्ग से काटने का उपदेश देते हैं तब कहीं जीव का इस अधः पतन से छुटकारा होता है। इसलिये चाहिये तो सबही को कि इस तृष्णा रूपी गर्त्त में न डूबें परन्तु भगवद्भक्तों को तो अवश्य ही तृष्णा से किनारा करना चाहिये। धन की तृष्णा से मनुष्य की बहुत बुरी गति होती है। क्योंकि लक्ष्मी अति चंचल है स्थिर नहीं रहती है। तृष्णा दिनोदिन बढ़ती ही जाती है अधिक क्या जिन्होंने तृष्णा को अपनाया है उन्होंने दुःखों तथा अशान्ति में ही जीवन व्यतीत कीया है अतः तृष्णा रूपी सर्पिणी के दंश से सदैव सुरक्षित रहना चाहिये।

एक बार युधिष्ठिर महाराज ने भीष्म पीतामह से पूछा कि महाराज! हमने तृष्णा के वश हो कर भाई, बन्धु, गुरु आदिकों का वध कर दिया। यह दुष्टा तृष्णा किस प्रकार निवृत्त हो सकती है। तब भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को जनक और माण्डव्य ऋषि का सम्वाद सुनाया और कहा कि, माण्डव्य ऋषि ने भी इस प्रकार का प्रश्न विदेह जनक से पूछा था। तब महाराज जनक ने उनको कहा था कि देखो मैं इस लोक में अपना कुछ भी नहीं समझता हूं। यह सारी मिथिला नगरी जल रही है परन्तु इस में मेरा कुछ भी नहीं जलता।

यच्च काम सुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥

इस संसार में जो काम सुख है और जो दिव्य सुख है वह सुख तृष्णाक्षय से उत्पन्न होने वाले सोलहवें भाग के भी समान नहीं। जिस प्रकार से कालक्रम से जैसे बछड़े के बढ़ने के साथ उसके सींग भी बढ़ते जाते हैं इसी प्रकार।

"तृष्णा वित्तेन वर्धमानेन वर्धते"।

तृष्णा वित्त के बढ़ने पर बढ़ती जाती है। ज्यों २ मनुष्य के पास अधिक धन होता जाता है त्यों त्यों उसकी तृष्णा भी बढ़ती जाती है। जब मनुष्य किसी वस्तु को मोह से अपनी समझता है तो उस वस्तुके नष्ट पर होने पर उस को क्लेश होता है। अतः मनुष्य को किसी की भी कामना नहीं बढ़ानी चाहिये। कामनाओं पर प्रीति रखने से वह दुःख देती हैं।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
याऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्

मूढ़ बुद्धि पुरुषों के लिये जो दुस्त्याज्य है, पुरुष के जीर्ण होने पर भी जो जीर्ण नहीं होती और

जो जीवन भर का रोग है, उस तृष्णा के त्यागने वाले को ही सुख मिलता है।

मानव धर्म सार।

प्रथमोऽध्यायः

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य ब्रह्मणेमित तेजसे।
मनुप्रणीतान्विविधान् धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान्

अमित तेज वाले स्वयम्भू भगवान् को नमस्कार करके मनु प्रणीत विविध शाश्वत धर्मोंको कहता हूं॥१॥

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः।
प्रतिपूज्य यथा न्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥२

महर्षि एकाग्र (चित्त) बैठे मनुके पास पहुंचेऔर यथोचित पूजा करके यह वचन बोले॥ २॥

भगवन् सर्व वर्णानां यथावत् अनुपूर्वशः।
अन्तर प्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥३

भगवन्! आप हमें सारे वर्णोंके और अन्तरालों के धर्म ठीक ठीक और अनुक्रम से बतलाने की कृपा कीजिये॥ ३॥

जरायुजाण्डजानाञ्च तथा संस्वेदजोद्भिजाम्।
भूतग्रामस्य सर्वस्य प्रभवं प्रलयं तथा ॥४॥

जरायुज, अण्डज, स्वेदज, और उद्भिज तथा समस्त भूत समूह के उत्पत्ति और प्रलय को -॥ ४॥

आचारांश्चैव सर्वेषां कार्याकार्य विनिर्णयम्।
यथा कामं यथा योगं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥५

सब के आचार को, कार्याकार्य के विनिर्णय को यथा योग्य आप कहने को समर्थ हैं॥ ५॥

त्वमेकोऽस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः।
अचिन्त्यस्यामयेयस्य कार्य तत्वार्थवित्प्रभो ॥६

क्योंकि आप अकेले हे प्रभो! इस सारे विधान (रीतिकानून) के कार्य (कर्त्तव्य भाग) का सच्चा तात्पर्य समझने वाले हैं जो(विधान) अचिंत्य अपरिमेय स्वयम्भु(अनादि परमात्मा का है) अर्थात् वेद है॥६॥

स तैःपृष्टः तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः।
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान् महर्षीन् श्रूयतामिति॥७

इस प्रकार जब उन विशाल हृदय वालों ने उस अपरिमित शक्ति वाले (मनु) से पूछा तो वह बड़े आदर पूर्वक उन सब महर्षियों को उत्तर देने लगे॥सुनिये॥७

आसीदिदं तमोभूतं अप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥ ८॥

यह(विश्व) अपना अस्तित्व रखता था, अन्धेरेके रूप में न प्रत्यक्ष न कोई चिन्ह न तर्क से जानने योग्य न (शब्द) से जानने योग्य मानो गहरी नींद सोया पड़ा था॥८॥

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥९

तब भगवान् स्वयम्भू जिनकी (रचना) शक्ति कार्य्योन्मुख हुई है वह उस अन्धेरे को हटाता हुआ अव्यक्त हुआ भी इस महाभूत आदि को व्यक्त करता हुआ प्रकट हुआ॥९॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥१०

वह जो इन्द्रियोंसे परले (आत्मा) का ग्राह्य सूक्ष्म

अव्यक्त सनातन (सदासे है) सब भूतोंका अन्तर्यामी अचिन्त्य है वही स्वयं प्रकट हुआ ॥१०॥

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥११॥

उस (भगवान ने) अपने शरीरसे भिन्न२ प्रकारके जीवों को रचने की इच्छा करते हुये, ध्यान से पहले जलों (पानी की तरह पतला द्रवावस्था में आदा) को रचा, और उनमें अपना बीज छोड़ा ॥११॥

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु समप्रभम् ।
तस्मिन्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ॥१२

वह (बीज) सूर्य तुल्य चमकवाला एक सुनहरी (लाल भभकता हुआ) अंडा (गोला) हो गया उस (अण्डे) में वह स्वयं ब्रह्मा (होकर) प्रकट हुआ, जो सारे लोकोंका पितामह है ॥१२॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥१३

जल नार कहे जाते हैं, क्योंकि जल नर के पुत्र हैं। जिस लिये वह (जल) इस (परमात्मा) का पहला घर है इस लिये वह नारायण कहलाया है॥१३॥

यत् तत् कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
तत् विसृष्टः स पुरुषो लोकेब्रह्मेति कीर्त्यते ॥१४

वह (पहला) कारण जो अव्यक्त नित्य व्यक्त अव्यक्त स्वभाव वाला है उससे रचा वह पुरुष लोक में ब्रह्मा प्रख्यात है ॥१४॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात् तदण्डमकरोद्द्विधा ॥१५

उस अंडे में वह भगवान पूरा वर्ष भर निवास करके आप ही अपने ध्यान से उस अंडे के दो टुकड़े कर दिये ॥१५॥

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिञ्च निर्ममे ।
मध्ये व्योमदिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥

उनदोनों टुकड़ों से उसने द्यौ और भूमि को और (उनके) मध्य में आकाश और आठों दिशायें और जल का नित्य स्थान बनाया ॥ १६॥

सर्वेषान्तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥१७

पर उस (ब्रह्मा) ने आदि में सबके नाम और कर्म अलग २ और अलग २ मर्यादायें वेद के शब्दों से ही रचीं ॥१७

अग्निवायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम् ।
दुदोह यज्ञ सिध्यर्थं ऋग्यजुःसाम लक्षणम् ॥१८

और उसने अग्नि वायू और सूर्य से ऋग्, यजु, साम स्वरूप तीन प्रकार का वेद यज्ञकी सिद्धिके लिये दोहा ॥ १८॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहं अर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः ॥१९

अपने देह के दो भाग करके आधे से पुरुष हो गया और आधे से नारी उसनारी में से उस प्रभु ने विराट को उत्पन्न किया ॥ १९॥

एषांतुयादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ।
तत्तथावोऽविधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥२०

इस (संसार) में जिन भूतों का जैसा कर्म (पूर्वाचार्यों ने) बतलाया है वह तुम्हें वैसा बतलाऊंगा और जन्म में (जो) कर्म योग है (जिसक्रम से जन्म होता है) ॥ २०॥

अपुष्पा फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥

जो फूल के बिना फल वाले होते हैं वह वनस्पति कहलाते हैं, और जो फूल और फल दोनों वाले हैं वह वृक्ष कहलाते हैं ॥ २१ ॥

तपसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्म हेतुना ।
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःख समन्विताः ॥२२

यह (उद्भिज्य) (अपने पिछले जन्म के) कर्म के फल से अनेक प्रकार के अन्धेरे से ढके हुये पर भीतर छुपे ज्ञान वाले और सुख दुःख से युक्त होते हैं ॥ २२ ॥

यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदास्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥

जब वह देव जागता है तब यह जगत् चेष्टा करने लगता है जब शांतात्मा होकर सो जाता है तब सारा (विश्व) आंख मूंद लेता है (सो जाता है)॥

इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेवस्वयमादितः ।
विधिवत् ग्राहयामास मरीच्यादीनहं मुनीन् ॥

और यह शास्त्र रचकर स्वयं उस (ब्रह्मा) ने आदि में मुझे ही विधि अनुसार सिखलाया और मैंने मरीचि आदि मुनियों को (सिखलाया) ॥ २४ ॥

एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥२५

यह भृगु तुम्हें यह सारा शास्त्र सुनाएगा, क्योंकि इस मुनि ने सारा अपने पूर्णरूप में मुझ से पढ लिया है ॥ २५ ॥

अहो रात्रेविभजते सूर्यो मानुष दैविके ।
रात्रिःस्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥२६

दिन रात जो मनुष्य और देवताओं के हैं इनका विभाग सूर्य करता है, रात भूतों के सोने के लिये और दिन कामों की दौड़ धूप के लिये ॥ २६ ॥

तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुद्धयते ।
प्रति बुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥२७

उस दिन, रात के अन्त में सोया या जागता है और जागा हुआ व्यक्त अव्यक्त स्वभाव वाले मन को रचता है ॥ २७ ॥

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।
आकाशं जायते तस्मात् तस्य शब्द गुणं विदुः ॥

मन (ब्रह्मा की) रचने की इच्छा से प्रेरित हुआ रचना को बदलता है उससे आकाश उत्पन्न होता है, उसका शब्द गुण जानते हैं ॥ २८ ॥

अरोगाः सर्व सिद्धार्थाश्चतुर्वर्ष शतायुषः ।
कृते त्रेतादिषु ह्येषा मायुर्हसति पादशः ॥ २९

रोगों से रहित मनोरथ जिसके सब पूरे होते हैं चार सौ वर्ष की आयु वाले (मनुष्य होते हैं) सतयुग में त्रेतादि में इनकी आयु (इससे) पाद २ घटती जाती है ॥ २९ ॥

अन्ये कृतयुगे धर्माः त्रेतायां द्वापरे परे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ ३०

सतयुग में मनुष्यों के और धर्म होते हैं और युग की घटती के अनुरूप त्रेता में और, द्वापर में और और कलियुग में और होते हैं ॥ ३० ॥

तपः परंकृत युगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौयुगे ॥ ३१ ॥

सतयुग में प्रधान (धर्म) तप कहा जाता है, त्रेतामें (देवताओं का) ज्ञान, द्वापर में यज्ञ ही कहते हैं, और कलियुग में अकेला दान ॥ ३१ ॥

ब्राह्मं हृत युगं मोक्षं त्रेतातु क्षत्रियं युगम् ।
वैश्यो द्वापर मित्याहुः शूद्रः कलियुगः स्मृतः ॥

सत्युग को ब्राह्मण कहा है, त्रेता को क्षत्रिय, वैश्य को द्वापर, और शूद्र को कलियुग कहा है ।३२॥

सर्वस्यास्यतु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ।
मुख बाहूरुपज्जानां पृथक् कर्माणि अकल्पयत् ॥

इस सारी सृष्टि की रक्षा के अर्थ उस महातेजस्वी ने मुख, भुजा, रान और पावों से उत्पन्न हुओं के कर्त्तव्य अलग २ नियत किये ॥ ३३ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ३४

(वेदका) पढाना और पढना, यज्ञ करना और कराना (दान) देना और लेना ब्राह्मणों का नियत किया ॥ ३४ ॥

प्रजानां रक्षणं दानं इज्याध्ययन मेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समादिशत् ॥३५

प्रजा की रक्षा करना (दान) देना, यज्ञ करना, (वेद का) पढना और विषयों में न फंसना, क्षत्रिय का बतलाया ॥ ३५ ॥

पशूनां रक्षणं दानं इज्याध्ययन मेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषि मेव च ॥३६

पशुओं का पालन, दान, यज्ञ और (वेद का) पढना सौदागरी व्याज और खेती वैश्य का (बतलाया)।

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुःकर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूसामनसूयया ॥३७॥

एक ही कर्म (प्रभू ब्रह्मा) ने शूद्रका बतलाया है, कि नर्मी से इन्हीं वर्णों की सेवा ॥

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥३८

जिसके मुख से देवता सदा हव्य और पितर कव्य खाते हैं, उससे अधिक (और) कौन भूत (होसक्ता है) ॥ ३७ ॥

आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तःस्मार्त्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥

श्रुति और स्मृति में कहा आचार परम धर्म है, इसलिये आत्मवान (अपने आत्मा का मान रखने वाले) द्विज को इस (के पालन) में सदा सावधान होना चाहिये ॥ ३८ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः ।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेष रागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो योधर्मस्तन्निबोधतः ॥ १ ॥

धर्म जो (वेद के) जानने वाले धर्मात्मा, सदा द्वेष से रहित पुरुषों से सेवन किया गया है और हृदय से अनुज्ञा दिया गया है उसे जानो ॥ १ ॥

अकामस्य क्रिया काचित् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्यचेष्टितम् ॥२

कामना से शून्य की कभी कोई क्रिया इस लोक में नहीं दीखती है क्योंकि (मनुष्य जो २ करता है वह २ कामना की चेष्टा है ॥ २ ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेद निन्दकः ॥

जो द्विज हेतु शास्त्र के आश्रय से इन दोनों (धर्म के) मूलों का अपमान करे । उस नास्तिक को शिष्ट लोगों ने अलग कर देना चाहिये जो कि वेद निन्दक हैं ॥ ३ ॥

वेदःस्मृति सदाचारःस्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुःसाक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥४

अर्थ और काम में न फंसे हुओं के लिये धर्म का ज्ञान विधान किया है, धर्म के जिज्ञासुवों को परम प्रमाण श्रुति है ॥ ४ ॥

अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्म ज्ञानं विधीयते ।
धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥५॥

अर्थ और काम में न फंसे हुओं के लिये धर्म का ज्ञान विधान किया है, धर्म के जिज्ञासुओं को परम प्रमाण श्रुति है ॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देव नद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तप्रचक्षते ॥ ६ ॥

सरस्वती और दृषद्वती इन दो देवनदियों के जो मध्य में है, उस, देवताओं के रचे देश को ब्रह्मावर्त्त कहते हैं ॥ ६ ॥

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तराळानां स सदाचार उच्यते ॥७॥

उस देश में (वर्णों का और अन्तरालों का) जो आचार परम्परा क्रम से आया है (न कि अब का है), वह सदाचार (धर्मात्माओं का आचार) कहलाता है ॥७॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः ॥ ८ ॥

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल शूरसेनक, यह ब्रह्मर्षि देश हैं, जो ब्रह्मा वर्त से आगे उसके साथ है ॥ ८ ॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ ९ ॥

इस देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण के पास से पृथिवी पर के सभी मनुष्य अपना २ आचार सीखें ॥ ९ ॥

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधा ॥ १० ॥

पूर्व के समुद्र तक और पश्चिम के समुद्र तक इन दोनों पर्वतों के मध्य को विद्वान् आर्यावर्त्त जानते हैं ॥ १०

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतःपरः ॥ ११ ॥

काला हिरण, जहां स्वभाव से विचरता है, वह देश यज्ञ के योग्य जानना चाहिए, इस से आगे म्लेच्छ देश है ॥ ११ ॥

एतान् द्विजातयो देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः ।
शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः ॥ १२

द्विजों को चाहिए, कि प्रयत्न से इन देशों का आश्रय लें, हां शूद्र जीविका से तंग हुआ जहां कहीं बसे ॥ १२

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्त्तिता ।
संभवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत ॥ १३ ॥

यह धर्म का मूल तुम्हें संक्षेप से कह दिया है और इस विश्व की उत्पत्ति, अब वर्णों के धर्मों को जानो ॥ १३ ॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ १४

स्वाध्याय से, व्रतों से होमों से, त्रयी विद्या में निपुणता से इष्टियों से, पुत्रों से महायज्ञों से और यज्ञों से यह शरीर ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है ॥ १४ ॥

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ।१५

दसवें वा बारहवें दिन इनका नाम कराए, अथवा अच्छे तिथि मुहूर्त वा गुणयुक्त नक्षत्र में-१५॥

मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ।१६

ब्राह्मणका नाम मंगल सूचक हो, क्षत्रिय का बल से युक्त वैश्य का धन से युक्त, शूद्र का निन्दा वाला ॥ १६ ॥

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥१७

ओंकार पूर्वक तीन नाश न होने वाली महाव्याहृतियें और तीन पादवाली सावित्री यह ब्रह्म का मुख जानना चाहिये ॥ १७ ॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतंद्रितः ।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥१८

जो इन तीनों का सावधानी से प्रतिदिन पाठ करता है, वह परब्रह्म को प्राप्त होता है, वायु की तरह विचरता और आकाश शरीरी होता है ॥ १८ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यंविशिष्यते ॥

एक अक्षर परब्रह्म है, प्राणायाम उत्तम तप है, सावित्री से उत्तम कुछ नहीं है, चुप से सच बढ़कर है।

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजतिक्रियाः ।
अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥२०॥

वेद में कहे सब होम यज्ञ कर्म नाशवान हैं पर अक्षर अविनाशी ब्रह्म जानना चाहिए, जो कि प्रजा का पति है ॥ २० ॥

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुःस्याच्छतगुणः सहस्रो मानसःस्मृतः ।२१

जप का कर्म विधियज्ञ से दशगुना उत्तम होता है, वही फिर सौगुना होता है जब धीमी आवाज से किया जाय, और हजार गुणा जब मन में किया जाय।

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् २२

चारों पाकयज्ञ, विधि यज्ञों के समेत, यह सब मिलकर जप यज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर नहीं होते ॥ २२ ॥

जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्नवा कुर्यान् मैत्रो ब्राह्मणउच्यते ।२३

ब्राह्मण केवल जप से ही सिद्धि पाता है इसमें संशय नहीं और कुछ करे चाहे न करे । क्योंकि जो सूर्य तुल्य है, वह सच्चा ब्राह्मण कहलाता है ॥ २३ ॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ॥
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ।२४

खींचनेवाले विषयों में विचरते हुए इन्द्रियों के रोकने में विद्वान् यत्न करे, जैसे सारथि घोड़ों के २४॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता ।२५

कान, त्वचा, आंखें, जीभ और पांचवां नाक । और गुदा उपस्थ, हाथ और पावों और दशवीं वाणी कही है ॥ २५ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ।२६

इनमें से क्रमवार कान आदि पांच को ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि पांच को कर्मेन्द्रिय कहते हैं ॥

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥

ग्यारवां मन जानो, जो अपने गुण से दोनों शक्तियोंवाला है, जिसके जीते जाने पर यह दोनों पांच २ के समूह जीते जाते हैं ॥ २७ ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति २८

इंद्रियों के लगाव से पुरुष निःसंदेह दोष को प्राप्त होता है। हां वही है, जिनको फिर वशमें करके सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ २९ ॥

कामना कभी विषयों के उपभोग से शान्त नहीं होती है, घी से अग्नि की तरह अधिक ही बढ़ती है।

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत् ।
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ।३०

जो इन सब को पालेवे, और जो इन सब को त्याग देवे, सब कामनाओं की प्राप्ति से उस का त्याग ही बढ़कर होता है ॥ ३० ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ३१

वेद, दान, यज्ञ नियम और तप इन दोषों से भरी हुई वासना वाले कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं ॥ ३१ ॥

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ३२

जो पुरुष सुनकर, छूकर, देखकर, खाकर वा सूंघकर न हर्ष करता है, न ग्लानि करता है, उसको जितेन्द्रिय जानो ॥ ३२ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ३३॥

पर सारी इंद्रियों में से यदि एक भी इंद्रिय बह निकलता है, तो उससे इसकी समझ बह जाती है, जैसे चमड़े के पात्र से पानी ॥ ३३ ॥

वशेकृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥३४॥

इंद्रियों के गण को वस में करके, तथा मनको वस में करके शरीरको बिना पीड़ा दिये युक्तिसे सारे कार्योंको साधे ॥ ३४ ॥

पूर्वां सन्ध्यां जपं स्तिष्ठेत्सावित्रीमर्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ३५

पहली संध्या में जप करता हुआ सूर्य के दर्शन होने तक खड़ा रहे, और पिछली में भली भांति तारों के स्पष्ट दीखने तक बैठकर जाप करे ॥ ३५ ॥

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनोव्यपोहति ।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥

पहली सन्ध्या में खड़ा होकर जप करता हुआ रात्रि के पाप को दूर करता है, और पिछली में बैठा हुआ दिन के किये पाप को नष्ट करता है ॥ ३६ ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ३७

जो पहली सन्ध्या में नहीं खड़ा होता है, और जो पिछली सन्ध्या को नहीं उपासता है, उसको शूद्र

की तरह द्विजों के सारे कर्त्तव्य से अलग कर देना चाहिये ॥ ३७ ॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ३८॥

वेद के उपसाधन में, और नैत्यक स्वाध्याय और होम के मन्त्रों में अनध्याय की रुकावट नहीं है ॥ ३८ ॥

नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ३९

बिना पूछे किसी को न कहे, और न ही अविधि से पूछते हुए को कहे, जानता हुआ भी बुद्धिमान् लोक में अनजानसा रहे ॥ ३९ ॥

अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥४०॥

जो अधर्म से बतलाता है, और जो अधर्म से पूछता है, उन में से एक मरजाता है, वा विद्वेष को प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

धर्म्यार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा ।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥४१॥

जहां धर्म्म और अर्थ न हो, वा वैसी सेवा न हो, वहां विद्या नहीं देनी चाहिये, जैसे अच्छा बीज ऊसर में ॥ ४१ ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ४२

जो बड़ों को नमस्कार करने के स्वभाववाला है और प्रतिदिन उनके पास उठने बैठनेवाला है उसकी चार चीजें बढ़ती हैं आयु, विद्या, यश और बल ॥ ४२

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम् क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ।४३

ब्राह्मणों का बड़प्पन ज्ञान से होता है, क्षत्रियों की वीरता से, वैश्यों की अनाज और धन से, जन्म से केवल शूद्रों की ॥ ४३ ॥

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ।४४

इससे कोई पूजनीय नहीं होता है, कि इसका सिर श्वेत होगया है जो युवा भी विद्वान् है, उसको देवता पूजनीय जानते हैं ॥ ४४ ॥

संमानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥४५॥

ब्राह्मण संमान से सदा इस तरह डरे, कि मानो विष है और अपमान को अमृत की तरह सदा चाहे॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ।४६

जो द्विज वेद को न पढकर अन्यत्र श्रम करता है, वह जल्दी जीता ही शूद्रता को प्राप्त होता है, और उसके पीछे उसका वंश भी ॥ ४६ ॥

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ।४७

वेद के विधान से पहला जन्म माता से होता है, दूसरा मौञ्जीबंधन से, तीसरा यज्ञ की दीक्षा से ॥ ४७ ॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ४८

जहां गुरु पर दोष लगाया जाता है वा निंदा प्रवृत्त है, वहां कान ढाप लेने चाहियें, वा वहां से दूसरी जगह चले जाना चाहियें ॥ ४८ ॥

मात्र स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनोभवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥४९॥

अपनी माता, बहिन वा कन्या के साथ भी एकान्त में न बैठे, क्योंकि बलवान् इन्द्रिय समूह खींचलेता है ॥ ४९ ॥

यथाखनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥५०॥

जैसे कुदाल से खोदता हुआ पुरुष पानी को पालेता है, इसी प्रकार आज्ञाकारी अपने गुरु के अन्दर छिपी विद्या को पा लेता है ॥ ५० ॥

आचार्योब्रह्मणोमूर्त्तिः पितामूर्तिः प्रजापतेः।
मातापृथिव्यामूर्तिस्तुभ्रातास्वोमूर्तिरात्मनः ५१।

आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की, माता पृथिवी की और अपना भाई अपनीही मूर्ति है॥

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तपउच्यते।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ ५२॥

उन तीनों का आज्ञाकारी होना परम तप कहलाता है, उनकी अनुमति विना कोई और धर्म न करे ॥ ५२ ॥

त एवहि त्रयो लोकास्तएव त्रयआश्रमाः।
तएव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रियोऽग्नयः ५३

यही तीनों लोक, यही तीनों आश्रम, यही तीनों वेद, यही तीनों अग्नियें कहे हैं ॥ ५३ ॥

मैत्रयाणी उपनिषद्।

चौथा प्रपाठक।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी बालखिल्य अति आश्चर्य को प्राप्त हो कहने लगे, "हे भगवन्! आप को नमस्कार है, हम को आज्ञा दीजिये। आप के सिवाय हम को अन्य आश्रय नहीं है, भूतात्मा में रहने वाला कौन पुरुष इन सब को त्याग कर सायुज्यता को प्राप्त होता है?" तब शाकायन्य कहने लगे, [१] "जैसे महानदी में विवर्त होता है तैसे इस भूतात्मा के पूर्व के कर्म होते हैं, जो अवश्य भोगने पड़ते हैं। जैसे समुद्र का किनारा आश्चर्य रूप है। तैसे भूतात्मा को मृत्यु की प्राप्ति अवश्य होती है। जैसे पशु रस्सी से बांधा जाता है तैसे शुभाशुभ कर्मों से यह भूतात्मा बंधन को प्राप्त होता है। जेलखाने में पड़े हुये जंतु की समान अस्वतंत्र होता है। यम के राज्य में रहता हो इस प्रकार वह अत्यन्त भययुक्त होता है। जैसे कोई मदिरा पीकर उन्मत्त हुआ हो ऐसे सुख रूप मदिरा से उन्मत्त हो जाता है। दुष्टों से घिर गया हो ऐसे भटकता है। महासर्प से काटे हुये के समान विपत्ति से दुःख होता है। जादू की समान मायामय होता है स्वप्न की समान मिथ्या देखता है। केले के वृक्ष के समान सार रहित होता है। नट की समान क्षण क्षण में वेष बदलने वाला होता है। दीवार के ऊपर के चित्र के समान मिथ्या सुंदर है। शब्द स्पर्शादि सब विषय अनर्थ रूप हैं। इन में आसक्त भूतात्मा परम पद का स्मरण नहीं करता। [२] इस भूतात्माके तैर जाने का उपाय इस प्रकार है-विद्या की प्राप्तिरूप धर्म या आचरण करना, अपने आश्रम में रहना, अपने धर्म

में ही सब को धारण करना, अन्य सब को स्तंभ की शाखा समान जानना, इस से यह भूतात्मा ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है। ऐसा न करने से नीच गति प्राप्त होती है। यह भूतात्मा यदि स्वधर्म में रहता है तो वेद में कहे हुये धर्म का उल्लंघन करने वाला आश्रमी नहीं कहलाता। जो अपने आश्रम धर्म को आचरता है उस को तपस्वी कहते हैं। जो तपस्वी नहीं होता उस को आत्म ध्यान की प्राप्ति अर्थात् कर्म शुद्धि नहीं होती। तप के योग से सत्व की प्राप्ति होती है, सत्व से मन की प्राप्ति होती है, मन से आत्मा की प्राप्ति होती है और आत्मा साक्षात्कार होने से चक्र में से निवृत्त होता है। [२] इन श्लोकों में कहा है कि जैसे लकड़ी बिना [illegible] शांत- अपनी प्रकृति में लय होती है वैसे वृ[illegible] क्षय होने से चित्त अपनी मूल प्रकृति में लय हो जाता है। (१) अपनी प्रकृति में [illegible] हो कर सत्य के [illegible]ति गमन करने वाला होता है और इन्द्रियों के विषयों में मुग्ध मन कर्म के वश होने से अनृत को प्राप्त होता है। (२) चित्त ही संसार है, प्रयत्न कर के उसका शोधन करना चाहिये, चित्त आत्माकार बन जाय, यह ही सनातन रहस्य है। (३) चित्त की कृपा से शुभाशुभ कर्मों का नाश होता है, जब प्रसन्नात्मा की स्थिति आत्मा में होती है तब अव्यय सुख की प्राप्ति होती है (४) प्राणी का चित्त जिस प्रकार विषयों में आसक्त होता है यदि ऐसा ही ब्रह्म में आसक्त हो तो कौन मनुष्य बंधन से मुक्त न हो? (५) मन दो प्रकार का है शुद्ध और अशुद्ध कामना युक्त मन अशुद्ध, और कामना रहित मन शुद्ध कहलाता है। (६) मन को लय और विक्षेप से भली प्रकार रहित करे, जब मन इस प्रकार अमन बन जाता है तब परम पद की प्राप्ति होती है (७) जब तक मन के संकल्पों का क्षय न हो तब तक मन को हृदय में रोका करे, यह ही ज्ञान और मोक्ष है अन्य सब ग्रन्थ का विस्तार रूप है। (८) समाधि से जिस का मल दूर हो जाता है, ऐसे मन को आत्मा में युक्त करने से जो सुख होता है उसका वर्णन वाणी से करना अशक्य है, वह स्वयं अंतःकरण से ग्राह्य है। (९) जैसे जल में जल, अग्नि में अग्नि, और आकाश में आकाश एकत्र किया हुआ देखने में नहीं आता इसी प्रकार जब चित्त का लय होता है तब पुरुष मोक्ष भाव को प्राप्त होता है (१०) मनुष्य का मन ही बंधन और मोक्ष में कारण है, जब मन विषयों में आसक्त होता है तब बंधन को प्राप्त होता है और जब विषयों से रहित होता है तब मुक्त होता है। (११) कौत्सायनि ने ब्रह्म की इस प्रकार स्तुति की है:- तू ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र, और चन्द्रमा रूप है। (१२) तू मनु, यम, पृथ्वी, अच्युत, स्वार्थ तथा स्वाभाविक अर्थ में और बहुत रूप से स्वर्ग में रहता है। (१३) हे विश्वेश्वर! तुझे नमस्कार है, तू विश्वात्मा, विश्व के कर्म करने वाला, विश्व का भोक्ता, विश्व की माया वाला, और विश्व की क्रीडा-प्रीति में व्यापक है। (१४) शांतात्मा, ऐसे तुझे नमस्कार है, अत्यंत गुप्त ऐसे तुझे नमस्कार है। अचिंत्य, अप्रमेय, आदि और अंत से रहित तू ही है (१५) (४) एक तम प्रथम होता है, यह तम पुरुष से प्रेरित हो कर विषमपने को प्राप्त होता है इस से रज रूप होता है, इस रजस में प्रेरणा होती है तब विषय भाव को प्राप्त होता है यह तम का रूप है। इस तम में प्रेरणा होने से उस में से सत्व रूप प्रकट होता है, इस सत्व गुण में जब प्रेरणा की जाती है तब वह अंश रूप से प्रकट होता है। यह अंश चेतन मात्र

सब पुरुषों में क्षेत्रज्ञ रूप, संकल्प, प्रयास, अभिमान, रूप और प्रजापति रूप है। उस का प्रथम का शरीर इस प्रकार है:- ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र। जो राजस् अंश रूप है सो ब्रह्मा, तम का अंश रूप रुद्र, और सात्विक का अंश रूप विष्णु, इस प्रकार एक प्रजापति तीन रूप से, आठ रूप से, एकादश रूप से, द्वादश रूप से और अनेक रूप से हुआ है। जो प्रकट हुये में रहता है, वह सब प्राणियों का आधार रूप और अधिपति रूप है - यह आत्मा भीतर और बाहर सब स्थानों में व्यापक है -(५)

जो प्रथम एक था सो दो प्रकार हुआ ; प्राण और आदित्य। दो पांच प्रकार के हुये। इस प्रकार वह रात्रि दिन, बाहर भीतर, सर्वत्र व्याप रहा है। आदित्य बहिरात्मा है। अन्तरात्मा की गति से बहिरात्मा का अनुमान होता है। सब गति क्या हैं सो कहते हैं। जो विद्वान् है, जिसका पाप नाश होगया है, जो श्रेष्ठ है, जो शुद्ध मनवाला है, ब्रह्ममें निष्ठा वाला है, और जिसके चक्षु खुले हैं ऐसा अन्तरात्मा आकर या प्रकट होकर के बहिरात्मा का स्थूल वस्तु का अनुमान बान्धता है। उस को गति कहते हैं। यह अन्तरात्मा आदित्य में हिरण्य गर्भमय और पुरुष रूप से है, जो हिरण्य के समान मेरा दर्शन करता है वह ही पर अंतरात्मा है। सो हृदयाकाश में रहता है, अन्न का भक्षण करता है। (१) जो अन्तरात्मा हृदय कमल में रहता है और अन्न का भक्षण करता है, सोही अग्नि रूप है स्वर्ग में रहता है और रूप है, काल रूप है, अदृश्य रूप है और सब प्राणियों के अन्न का भक्षण करता है। कमल किसको कहते हैं। जो आकाश रूप है सो कमल, सोही चार दिशा और उपदिशा है, इस प्रकार की संस्था है। अग्नि प्रथम रूप है प्राण और आदित्य दूसरा रूप है। व्याहृति के गायत्री युक्त ओंकार अक्षर से उसकी उपासना करें। (२) ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। मूर्त और अमूर्त। जो मूर्त स्वरूप है सो सत्य है वही ब्रह्म है। जो ब्रह्म है वही ज्योति रूप है। जो ज्योति रूप है वही आदित्य रूप है और वही ॐकार रूप है। उसने अपने आत्मा को तीन प्रकार से व्यक्त किया है। इसलिये ॐकार ३ मात्रा वाला है इन मात्राओं से सब जगत् व्याप्त है आदित्य का ॐकार रूप से ध्यान करे और उसमें आत्माको आसक्त करे। (३) और कहा है जो उद्गीथ वह ही प्रणव है। इस उद्गीथ, को प्रणव रूप प्रेरक नाम और रूप वाला, निद्रा रहित और जरा रहित मृत्यु से रहित और पांच प्रकार का जाने। आकाश में उसकी स्थिति है। वह ऊर्ध्व मूल वाला, ब्रह्म तक शाखा वाला, आकाश, वायु, अग्नि, उदक और भूमि आदि रूप, एक रूप होकर सर्वत्र व्यापक और ब्रह्मरूप है। यह आदित्य ॐकार के विषे है। इससे ॐकार की उपासना करे यह अक्षर पुरुष रूप है, इसकी उपासना करने से जिसकी जो कामना होती हैं वह पूर्ण होती हैं। (४) और कहा है कि इस प्रजापति का ॐकार इस अक्षर से नाद वाला शरीर है, स्त्री, पुमान् और नपुंसक से लिङ्ग वाला, अग्नि वायु और आदित्य से प्रकाश वाला, विष्णु और रुद्र से अधिपति रूप, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, और आहवनी से मुख रूप से, ऋक् यजु और साम से विज्ञान रूप, भूः भुवः और स्वः से लोक वाला, भूत, भविष्य और वर्तमान से कालता वाला, प्राण, अग्नि और सबसे प्रताप वाला है। अन्न, जल और चन्द्र से पोषण करने वाला और मन बुद्धि अहंकार से चेतन वाला, प्राण, अपान और व्यान से प्राण वाला है। कितनेक कहते हैं कि प्रजापति ऐसा

कहते है कि अमुक शरीर का मैं त्याग करता हूं, इस लिए प्रस्तोता रूप से वह शरीर धारण किया हुवा है। वह ही सत्य काम, पर और अपर रूप और ॐकार रूप है। [५] यह सब सत्य रूप से था, प्रजापति सरश्चर्या करके भूर्भुवः और स्वः बोले। यह प्रजापति का स्थूल अथवा लोक वाला शरीर है। स्वः यह प्रजापति का मस्तक है। भू नाभि रूप, भुवः पाद रूप है। इस व्यापक पुरुष के चक्षु आदित्य रूप हैं। ॐकार की मात्रायें महत् अहंकार में रहती हैं। चक्षु से यह प्रजापति मात्रा में संचार करता है। सत्य ही चक्षु है इन चक्षु में रहने वाला पुरुष सब विषयों में व्यक्त होता है इस लिए भूर्भुवः और स्वः रूप से उसकी उपासना करे। विश्व चक्षु की समान यह विश्वात्मा उपासना युक्त होता है। यह शरीर प्रजापति और विश्व रूप है और सर्वत्र रहता है। इस प्रजापति के शरीर की उपासना करे॥ ६

तत्सवितुर्वरेण्यम्

इस चरण में सविता को आदित्य भगवान् समझो ब्रह्मवादी कहते हैं कि आत्मा की कामना से याचना करने को यह कहा है।

भर्गो देवस्य धीमहि।

इस चरण के लिए ब्रह्मवादी कहते हैं कि हम किस का चिन्तवन करते हैं कि जो सविता रूप से स्थिति कर रहा है उसके तेजको।

धियो यो नः प्रचोदयत्।

इस चरण से ब्रह्मवादी कहते हैं कि हमारी बुद्धि के विषे तुम प्रेरणा करो। तारक रूप, चक्षुरूप, इस आदित्य में जो भर्ग रहता है, उसकी हम उपासना करते हैं, कान्ति से जिस की गति सर्वत्र रहती है, उसको भर्ग कहते हैं अथवा जो सबको तपावे उसको भर्ग कहते हैं। भर्ग यह ही रुद्र है। ब्रह्मवादी कहते हैं कि भर्ग अर्थात् जो सर्व लोकों को प्रकाशता है वह भर्ग है, भूत मात्र को जो रंजन करता है वह भर्ग है। इस प्रजा का जिस में गमन होने से पीछे आना नहीं होता, इस प्रकार रक्षा करने वाला होने से उस को भर्ग कहते हैं। शत्रुको तपाने वाला होने से उस को सूर्य, उत्पन्न करने से सविता, दान अर्थात् इच्छा पूर्ण करने से आदित्य, पवित्र करने वाला होने से पावमान और सुपुरुष को उठाने वाला होने से आदित्य कहते हैं।

सत् होने से आत्मा अमृत रूप कहलाता है। सो ही आत्मा मनन करने वाला, गमनवाला, खिसकने वाला, आनन्द प्राप्त करने वाला, कर्ता, वक्ता, स्वाद लेने वाला, सूंघने वाला, स्पर्श करने वाला और सब के शरीर में रहता है। इस एक ही आत्मा में द्वैत ज्ञान होता है। आत्मा कार्य कारण से मुक्त है, वर्णन न हो ऐसा है, उपमासे रहित है और स्पर्श से रहित है॥ ७॥

यह आत्मा ईशान, शम्भू रूप, भवरूप रुद्ररूप, विश्वकर्ता रूप, हिरण्य गर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शांत, विष्णु, नारायण, अर्क, सविता, धाता, सम्राट्, इन्द्र और इन्दु रूप से अग्नि से आवृत होकर वही प्रकाशता है सहस्राक्षि रूप से उसे जानना चाहिए और ध्यान करना चाहिए। सब प्राणी मात्र को अभय देकर अर्थात् आत्माकार जानकर मनुष्य को अरण्य में जाना चाहिए। सब इंद्रियों के विषयों को शरीर से बाहर निकाले। इस प्रकार करने से परमात्मा का साक्षात्कार होता है। यह विश्व रूप होता है, पापों

का हरने वाला, जातवेदस्, परायण, ज्योति, एक प्रकाशरूप, सहस्र रश्मि रूप, अनेक रूप में स्थित, कर्ता, और प्रजा का प्राण रूप है, यह ही सूर्य उदय को प्राप्त होता है।

आओ ! आओ !! पुनः आओ !!!

(ले० राजरानी सूरी 'विदुषी' "साहित्य प्रभाकर")

सामग्री ले पूजन की मैं दर्शन हित तुम्हारे नाथ।
मांगत हूं वरदान प्रभोश्वर अभिवादन है नत कर माथ॥
सहस्रों ही भक्त तुम्हारे दर्शन हित नित आते हैं।
पूजा हित अति दिव्य पदार्थ, नित्य नवीन वह लाते हैं॥
मैं पामरी अति अदीना, दीना हूं पर हूं तेरी।
दया सिन्धु तव नाम है, भगवन् ! हरण करो पीड़ा मेरी॥
तेरे पूजन हित क्या लाऊं ? सभी द्रव्य हैं तेरे नाथ।
तो भी शिवरी के बेरों को सादर था अपनाया नाथ।
वेद शास्त्र शंभु हों प्रभोवर तेरी महिमा गाते हैं।
ऋषि मुनि- तापसी-योगी दत्त चित्त हो ध्याते हैं॥
भक्ति भावना के पुष्प हैं, गन्ध रहित हैं अपनाओ।
भक्त वात्सल्य प्रभु दयासिन्धु हो "आओ ! आओ !! पुनः आओ !!!

मनो वृत्तियों का निग्रह।

पाठकों को याद होगा कि मैंने "भक्ति" के किसी पिछले अंक में मनो वृत्तियों की मा-कता पर कुछ लिखा था, अब जरूरी समझता हूं कि मनोवृत्तियों के निग्रह अथवा मनोविकारों के शासन पर भी कुछ लिख कर आपकी यत् किञ्चित् सेवा कर सकूं।

एक कहानी है कि एक बार एक पुरुष ने चोरी की और जब वह पकड़ा गया तो न्यायाधीश के समक्ष अपनी सफाई देते हुए कहने लगा :-"हुजूर मैं ने चोरी तो अवश्य की है परन्तु सच्चा अपराधी मैं नहीं हूं, मेरे पड़ोसी ने अपना सोने का चमकदार कंठा दिखा कर मेरा मन को विचलित कर दिया, इसी कारण से विवश हो मैं ने इसे चुरा लेना हि उचित समझा, अतएव सच्चा अपराधी वही है उसी को दंड मिलना चाहिये।" अपराधी का यह भाषण सुनकर जज साहिब हंसे, और उसे एकान्त वास की सजा देकर कहा कि अब तुम्हारे मन को विचलित

करने और सुझाने के लिये तुम्हारे सामने कोई न आवेगा।

विचार पूर्वक यदि देखा और समझा जावे तो नैतिक संसार में मनुष्य प्रति दिवस इसी प्रकार की युक्तियों का उपयोग किया करता है। 'अमुक मनुष्य मेरे कार्य में बाधा डालता है' अमुक ने मुझे ऐसे अपशब्द कहे जिस से मुझे क्रोध आगया चार आदमियों में जब बैठते हैं तो लाचार होकर अनुचित और उचित के भाव त्याग कर ऐसा कार्य करना ही पड़ता है:-इत्यादि सब अपने दोषों और अपनी निर्बलताओं को दूसरे के सिर मढ़ने के प्रयत्न नहीं तो क्या है ?

कितना अच्छा हो यदि मनुष्य कोई अपराध करने के साथ ही उसे स्वीकार करने में आगापीछा न देखे और आना कानी न करे। नैतिक उन्नति की सब से पहिली सीढ़ी यही है कि मनुष्य अपने अपराधों को समझने लगे। हजारों मनुष्य बुरे कार्य तो नित्य करते हैं पर उन विचारों को इंच मात्र भी खबर नहीं कि यह कार्य वास्तव में बुरे हैं। जिस समय चोर चोरी को बुरा समझने लगे उसी समय से समझ लो उस का कल्याण हो गया और वह ठीक रास्ते पर आगया। परन्तु केवल दिखाऊ मन की इच्छा से अथवा किसी की हां में हां मिलाने के अभिप्राय से बुरे कार्य को बुरा कह देने से कोई लाभ नहीं। इस से तो और उलटी हानि है। बुरे कामोंसे बुरा होने की बात तो कोसों दूर रही, ऐसा करने से तो उसने अपने आप को ही ठगा कहना चाहिए। प्रपञ्चता अथवा मायाजाल इसी का नाम है। परन्तु देखा जाता है कि दुनियां में मनुष्योंने इसे ही सभ्यता और शिष्टाचार मान रखा है। ऐसे लौकिकव्यवहार की अवहेलना करने से समाज भले ही असंतुष्ट होजावे परन्तु उन्नति की अभिलाषा रखने वाले सज्जन को इस में ननुनच न करना चाहिए।

अपने किये हुये अपराधों को दूसरों के सिर मढ़ते फिरने की कुटेव के कारण मनुष्य अपने ऐबों को नहीं देख सकता। जो कार्य उस ने किया है उस का बुरा परिणाम होने पर वह तुरंत किसी दूसरे व्यक्ति को पकड़ने की कोशिश करने लगता है। अपने आलस्य द्वारा समय पर न किये गये कार्योंकी आलोचना होने पर वह अपने सिर का दोष दूसरों पर मढ़ देता है। यदि ऐसा करने के बदले वह अपने अपराध को मुक्तकंठ से स्वीकार कर ले तो सन्देह नहीं कि वह दुबारा वैसा कार्य करे। आप सब को मालूम होगा कि पुलिस द्वारा पकड़े हुये अनेक अपराधियों को सम्भवतः यह दंड भी दिया जाता है कि वह अपने अपराध को स्वीकार कर ले। इसका क्या अभिप्राय है ? यही कि अपराध को स्वीकार करलेने पर मनुष्य उस को सहसा नहीं कर सकता। यह उत्तम है, कि पहिले अपराध के लिये पेश होने वाले मनुष्यों को जेलखाने भेजकर बेशरम बनाने की अपेक्षा अपराध कबूल करने के लिए बाध्य किया जावे। और अपराध के दोषों को अपराधी के हस्तल पर अंकित किया जावे, इस प्रथा से सुधार की अधिक सम्भावना है।

कई लोगों का मत है कि मनुष्य के हृदय में अपराध को स्वीकार न करने की इच्छा प्राकृतिक है। इस लिये वह किस प्रकार बुरी कही जा सकती है ? इसके उत्तर में यह कहना है कि अपराध को स्वीकार न करने की इच्छा प्राकृतिक नहीं है, परन्तु अपराधी बनने का डर प्राकृतिक है। यदि

अपराध स्वीकार करने पर मनुष्य को निन्दा अथवा दंड का भय न हो तो उसको ऐसा करने में किसी प्रकार की आनाकानी न होगी। क्या इस से यह प्रमाणित नहीं होता कि समाज ने दंडविधी को बना कर मनुष्य समुदाय को झूठ बोलने के लिये लाचार किया है। किसी विचार शील ने ठीक कहा है कि "ज्यों २ कानून कायदों की संख्या बढ़ती जाती है त्यों २ ही मनुष्य और अधिक चतुर बनते जाते हैं" स्मरण रहे कि अपने अपराध को स्वीकार करना यह उन्नतिपथ पर मानों कई पग आगे बढना है। साधनों को दोष देते फिरना मूर्खता है। वास्तव में कैद का दंड देने वाला मजिस्ट्रेट नहीं है तुम्हारे कार्य ही हैं। इस में संदेह नहीं कि संसार में पापसमूह रूपी पिशाच विविध प्रकार के मनहर रूप धारण कर मनुष्य के चित्त को चलायमान करने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु उन्हें अपने हृदय में स्थान देना या न देना तुम्हारे अपने काबू की बात है। यह भी स्मरण रहे कि जिस प्रकार भूतप्रेत का भय दृढ़चित्त मनुष्यों के हृदय में फटकने भी नहीं पाता, उसी प्रकार सच्चरित्र मनुष्यों के पास आने में पाप वासनाओं को भी बड़ा भय लगता है। लालच उसी के लिये है जो लालची है। निर्लोभी व्यक्ति को वह अपने फंदे में कभी नहीं फंसा सकता, अतएव उचित है कि लालची न बना जावे, कुवासनाओं को धिक्कारना और दोषी ठहराना निरर्थक सा जचता है। मनुष्य की दृष्टिको मोहित करने वाले पाप समूह की संसार में क्या आवश्यकता थी? भोले भाले शुद्ध हृदय मनुष्यों को ठगना और उन्हें चक्कर में फंसाना, निदान उन की निन्दा करना, और उन्हें दंडपात्र ठहराना, इत्यादि सब दुष्टों का मायापूर्ण षड्यंत्र मालूम होता है। वास्तव में विचार करने से मालूम होता है कि पदार्थों की परीक्षा करनेके बहुधा भयपूर्ण स्थलों का उपयोग किया जाता है। सोने जैसे उत्तम वस्तु की परीक्षा करने के लिए काली कसोटी की जरूरत है। इसी भांति मानव हृदय की जांच करने के हेतु ही पाप वासनायें संसार में विद्यमान हैं। देखो जबतक ५००) की पराई थैली को अनायास अवगत करने का [*Chance*] अवसर तुम्हें प्राप्त नहीं होता तब तक तुम लोभी हो कि निर्लोभी इसकी परीक्षा कैसे हो सकती है, यदि पाप न होते तो विश्व में महात्मा और दुरात्मा की पहिचान कैसे की जासकती। अतएव छल, अभिमान माया, मोहादि कुवासनाओं से घेरे जाने पर अपने आपको असमर्थ मानकर उन्हें दोष का स्थान मानना मानो उन्नति के मार्ग से दूर परे हटना है।

जब तुम्हें निज की आत्मिक शक्तिका परिचय होगा, उस समय संसार के सभी अनिष्ट पदार्थ इष्ट सूझने लगेंगे। तब तुम्हें मालूम होगा कि जिन पदार्थों को तुम अपनी उन्नति के बाधक और शत्रु के समान समझते थे वे वास्तव में तुम्हारे हितचिन्तक मित्र और उन्नति के सहायक हैं। वे रोग, जिनके आने पर तुम नाना प्रकार से दुःखी होकर तड़फते थे, आज तुम्हें अपने धैर्य के परीक्षक जान पड़ेंगे, और अब तुम उनके उपस्थित होने पर रोने तड़फने के बदले साहस और धैर्य से काम लेवो। उन शिक्षकों का मत जो तुम्हें बुरा बताते हैं, तुम्हें ठीक न मालूम होगा, किन्तु पश्चात् तुम्हें जान पड़ेगा कि ये तो सभी तुम्हारे मित्र हैं, जो कि तुम्हारे उन्नतिपथ में सहायता देते हैं। जिस समय यह भाव तुम्हारे हृदय में उत्पन्न हो जायगा उसी समय अपने मनोविकारों का निग्रह

करने के लिये जिस सामर्थ्य की आवश्यकता होगी, आप ही आप वह तुम्हारे हृदय में आजावेगी।

पं० ज्ञानचन्द्र जी शास्त्री कनखल।

उपदेश संग्रह।

(महाभारत से)

अहंकार से पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए हैं। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज यह पञ्चमहाभूत हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह इन भूतों के विषय हैं इन में सब प्राणी मोहित रहते हैं। जो भूत जिसमें से उत्पन्न होता है उसमें ही उसका लय हो जाता है। भूतों की उत्पत्ति उत्तरोत्तर अनुलोम क्रम से होती है। इसी प्रकार भी लय भी प्रतिलोमक्रम से होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह सब क्रियायें नित्य हैं और स्थूल पदार्थ अनित्य हैं। अन्तरात्मा में प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान यह पांच वायु रहते हैं। वाणी, मन और बुद्धि के सहित यह अष्टात्मक जगत् बना हुवा है। त्वचा, नासिका, कान, नेत्र, जीभ और वाणी जिस के नियम में हो, जिसका मन विशुद्ध हो और जिसकी बुद्धि उलटी न चलती हो तथा जिसके मनको यह आठ अग्नियें न जलाती हों वह पुरुष शुद्ध ब्रह्म को प्राप्त होता है। ग्यारह इन्द्रियां भी अहंकार से उत्पन्न हुई हैं।

श्रोत्रंत्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ दाग्दशमी भवेत्॥
इन्द्रियग्राम इत्येष मन एकादशं भवेत्॥

कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, पैर, गुदा उपस्थ, हाथ, वाणी और ग्यारवां मन है। जब पुरुष इन इन्द्रियों को जीत लेता है तब ब्रह्मका प्रकाश होता है। श्रोत्रादि पांच इन्द्रियें ज्ञानेन्द्रिय कहलाती हैं यह बुद्धि के साथ जुड़ी हुई हैं। पादादि पांच कर्मेंद्रियां हैं यह कर्म के साथ जुड़ी हुई हैं। मन को दोनों में जानो। आकश प्रथम भूत है। उसका अध्यात्म (आकाश के आत्मा के रहने का स्थान) कान है। उसका अधिभूत (जिस वस्तु को कान स्वीकार करता है) शब्द है। उसका अधिदैवत (अधिष्ठात्री देवता) दिशायें हैं। वायु दूसरा भूत है। उसका अध्यात्म त्वचा है, अधिभूत स्पर्श है, और विद्युत् अधिदेवता शक्ति है। तीसरा भूत तेज है। उसका अध्यात्म चक्षु है, अधिभूत रूप है। और अधिदैवत सूर्य है। चौथा भूत जल है। उसका अध्यात्म जिह्वा है। अधिभूत रस है और अधिदैवत चन्द्रमा है। पृथिवी पांचवां भूत है। नासिका उसका अध्यात्म है, गन्ध, अधिभूत और वायु अधिदैवत कहलाती है।

अब इन्द्रियों के विषय में कहते हैं। तत्व दर्शी पुरुषों ने पादों को अध्यात्म (इन्द्रिय) कहा है, उन का अधिभूत (विषय) गमन है और अधिदेवता (देवता) विष्णु है। वायु की नीचेको गति अपान कहलाती है। उसका अध्यात्म पायु है, अधिभूत मल त्याग है और अधिदेवता मित्र है। सकल प्राणियों को उत्पन्न करने वाला उपस्थ अध्यात्म कहलाता है, उसका अधिभूत वीर्य और अधिदेवता प्रजापति है। हाथों को अध्यात्म कहा है, कर्म उसका अधिभूत है और इन्द्र अधिदैवत है। वाणी अध्यात्म है, वक्तव्य उसका अधिभूत और अग्नि अधिदैवत है। पञ्चभूतों के आत्मा को चलाने वाले मन को अध्यात्म कहते हैं, उसका अधिभूत संकल्प

और अधिदैवत चन्द्रमा है। सब संसार को रचने वाला अहंकार अध्यात्म है, अधिभूत अभिमान है और देवता रुद्र है। छः इन्द्रियों का विचार करने वाली बुद्धि अध्यात्म है, मन्तव्य अधिभूत है और ब्रह्म अधिदैवत है।

प्राणियों के पृथिवी, जल और आकाश यह तीन ही स्थान हैं। जन्म चार प्रकार का होता है। अण्डज अण्डे को फोड़ कर उत्पन्न होना, उद्भिज्ज -पृथिवी को फोड़ कर बाहर निकलना, स्वेदज पसीने से उत्पन्न होना, और जरायुज- झिल्ली में से निकलना भूतमात्र में यह चार ही प्रकार का जन्म देखने में आता है। छोटी जाती के खेचर और पेट से चलने वाले प्राणी अण्डज हैं। कीट आदि जो जन्तु मैल से उत्पन्न होते हैं वह स्वेदज कहलाते हैं। वृक्षादि जो पृथिवी को फोड़ कर उत्पन्न होते हैं वह उद्भिज्ज कहलाते हैं। मनुष्य और पश्वादि जरायुज कहलाते हैं।

गुण और अवगुण को न मानने वाला, आसक्ति से रहित, एकान्त वास वाला और भेदभाव रहित बर्ताव को सब सुखों का मूल कहा है।

विद्वान् कूर्म इवांगानि कामान् संहृत्य सर्वतः।
विरजः सर्वतो मुक्तो यो नरः स सुखी सदा॥

जैसे कछुवा अपने अंगों को सब ओर से सकोड़ कर अपने सब शरीर के भीतर करलेता है ऐसे ही विद्वान पुरुष को चाहिए कि सब कामनाओं को सब ओर से खैंच कर अपने भीतर लेजाय। जो मनुष्य रजोगुण से रहित और सब कामनाओं से मुक्त है वह सदा सुखी रहता है। कामनाओं का संयम करके और तृष्णाओं को क्षीण करके सावधान हुवा सकल भूतों का हितचिंतक मनुष्य ब्रह्मप्राप्ति के योग्य होता है। विषयों की ओर प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों का निरोध करने से अध्यात्मरूप विज्ञान प्रज्वलित होता है।

यथाग्निरिन्ध नैरिद्धो महाज्योतिः प्रकाशते।
तथेन्द्रिय निरोधेन महानात्मा प्रकाशते॥

जैसे लकड़ियों से जलता हुवा अग्नि बड़े प्रकाश को प्राप्त होता है वैसे ही इन्द्रियों के निरोध से महानात्मा भी उत्तम ज्योति को पाता है। अग्नि जिसका रूप है, जल (रुधिर) जिसका प्रवाह है, पवन जिसका स्पर्श है, गन्धवाली पृथिवी जिसका प्राण है, आकाश जिसके कान हैं शोक और रोग से जो घिरा हुवा है जिसके नौ द्वार हैं, जिसके जीव और ईश्वर दो देवता हैं, जो रजोमय है, तीन गुणों वाला है, जो वात, पित्त और कफ तीन धातु वाला है और जो संसर्ग में आनन्द मानता है उसको शरीर जानो। इस जीव लोक में इस शरीर को बड़ी कठिनता से चलाया जाता है। इस लोक में जिसने तीन गुण पांच इन्द्रियें और मनको जीत लिया है उसको स्वर्ग में ऊंचे से ऊंचा स्थान मिलता है। पांच इन्द्रियों को जो मन के समान वेग वाली और बड़े भारी जाल वाली हैं जीत लेने से मनुष्य काम और क्रोध दोनों को जीत लेता है। पश्चात् वह मनुष्य आत्मा को आत्मा के साथ जोड़ कर सब को सम भाव से देखता है। वास्तव में इन्द्रियजीत पुरुष ही सर्वोत्कृष्ट है। सुर, नर, मुनि, ऋषि महर्षि उस की स्तुति करते हैं।

उद्देश्य-सौष्ठव।

(ले० श्री० पं० किशोरी दासजी वाजपेयी शास्त्री गुरुकुल कांगड़ी)

जगत् के प्राणी मात्र का उद्देश अथवा लक्ष्य एक ही है- सुख की उपलब्धि। सुख दो प्रकार का है लौकिक और पारमार्थिक। सुख के इन दो मुख्य भेदों के कारण उद्देश या लक्ष्य भी दो प्रकार का ही

हो जाता है हमारे देश के ऋषि-मुनियों का लक्ष्य सदा ही पारमार्थिक रहा है। आधुनिक संसार का, विशेषतः पाश्चात्य देशों का, उद्देश लौकिक सुखही है। इधर ही इनका विशेषतः झुकाव है। हमारे देश की भी अब नित्य प्रति प्रवृत्ति इधर बढ़ती जाती है। इस लेख में हम इस बात पर विचार करेंगे कि इन दो उद्देशों में से कौन अधिकतर शिव और सुन्दर है।

लौकिक सुख-समृद्धि को ही सब कुछ मानने वाले पारमार्थिक जनों के विचारों पर हंसा करते हैं, क्यों? इस लिए कि उन्हें इधर कुछ दिखाई नहीं देता। इसमें उनका कुछ दोष नहीं, दोष तो उन की दृष्टि का, अत्यन्त परिमित बुद्धि का है। हमारा तो विश्वास है कि जिनका लक्ष्य परमार्थ है, लौकिक सुख उसे अनायास ही उपलब्ध हो जाते हैं, परन्तु यदि वह चाहता है तो। परन्तु जिसका उद्देश ही लौकिक सुख है, उस से परमार्थ बहुत दूर है। आप इसे यों समझिए।

एक मनुष्य का उद्देश है बम्बई जाना और दूसरे का फांसी। बम्बई जाने के लिये जो प्रयत्न करेगा और जायगा, उसे फांसी बीच में ही पड़ जायगी। यदि वह चाहेगा, तो मजे से फांसी शहर की सैर भी करेगा और फिर गाड़ी में सवार होकर बम्बई चल पड़ेगा। परन्तु, वह दूसरा पुरुष, जिस को केवल फांसी ही तक जाना अभीष्ट है, बम्बई स्वप्न में भी न देख सकेगा। वह तो उसका लक्ष्यही नहीं है। उसे मालूम ही नहीं कि बम्बई भी कोई शहर है, जिस पर शायद फांसी न्यौछावर हैं। तब भला बम्बई की बात क्योंकर जान सकता है और क्यों उसे अपना गमन-लक्ष्य बना सकता है। उसके लिए फांसी ही सब कुछ है। ठीक ही है "बिनु जाने न होईपरतीती" और "बिनु परतीति होय नहिं प्रीति" यह प्रीति ही भक्ति है, जो वस्तु की प्राप्ति में मुख्य कारण है। अच्छा, तो अब आप बतलाइये कि इन दो पुरुषों में कौनसा बढ कर आनन्द में रहा? एक बच्चा भी कह देगा कि बम्बई जाने वाला। यही बात लौकिक और पारलौकिक उद्देश की है। पार-लौकिक सुख की प्राप्ति करने वाले को लौकिक सुख भी अनायास मिल जाते हैं, यदि वह चाहे तो, और फिर उसके अन्तिम तथा मुख्य लक्ष्य परमार्थ की भी प्राप्ति होती है।

हमारे ऋषियों ने इन्हीं दोनों उद्देशों की सिद्धि के लिये चार आश्रमों की कल्पना की है। इन में से ब्रह्मचर्य तो दोनों-लौकिक और पारलौकिक सुखका मुख्य द्वार है-फाटक है। इसमें होकर सबको जाना पड़ेगा। इस का उपयोग दोनों में है। यह मूल है। इस फाटक में होकर प्रवेश कर चुकने पर आगे दो विशाल मार्ग मिलते हैं, जो अद्वय आनन्द से जा मिलते हैं, इन दो मार्गों में एक तो सीधा, पर जरा कठिन, है और दूसरा कुछ चक्कर से, किन्तु सरल, है। इस का खुलासा यों है कि ब्रह्मचर्य के बाद साधारण ब्रह्मचर्य के बाद-यदि मुमुक्षा प्रबल है, तो वह ब्रह्मचारी आजीवन ब्रह्मचारी रह कर भगवत्प्राप्ति के लिये साधन-सम्पत्ति के अर्जन में दत्तचित्त होता है और अभीष्ट की प्राप्ति के लिये सतत प्रयत्न करता है। यह गृहस्थाश्रम की ओर दृष्टि भी नहीं करता। इसी का नाम नैष्ठिक ब्रह्मचारी शास्त्रों में कहा है और इसी का मार्ग सीधा है। हम कह चुके हैं कि यह जरा कठिन है। जरा क्यों, मुक्तभोगियों का कहना है कि इस मार्ग पर चलना तलवार की धार

पर नाचना है। बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। तभी तो इसे आश्रम-गुरु कहा है।

इस के अतिरिक्त दूसरा वह मार्ग है, जो घूमता हुवा जाता है। जिस ब्रह्मचारी के मन में गृस्थाश्रम में प्रवेश करने की आई, वह उस साधारण ब्रह्मचर्य के बाद जिस की अवधि शास्त्रों में कम से कम पच्चीस वर्ष की मानी है, गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है और पच्चीस वर्ष तक इस में रहता है। पचीस वर्ष की इस आश्रम की परमावधि है, कुछ नियम नहीं है कि पच्चीस वर्ष तक अवश्य ही रहे। अर्थात् इस आश्रम में, आवश्यकतानुसार, अधिक से अधिक पच्चीस वर्ष, पचास वर्ष की उम्र तक, रह सकता है, इस से अधिक नहीं। ब्रह्मचर्याश्रम में २५ वर्ष रहने का नियम है, क्योंकि वह आवश्यक है, पर गृस्थाश्रम में वैसा नहीं।

गृहस्थाश्रम के अनन्तर पच्चीस वर्ष तक वानप्रस्थ रहनेका नियम है। गृहस्थाश्रममें पाया हुवा आराम छोड़ कर अगले चतुर्थाश्रम के लिये इस में भरपूर तैयारी करनी होती है। विविध तपश्चर्याओं द्वारा उनको काबू में करना होता है। इसके बाद फिर यह चौथा और अन्तिम परमहंस या संन्यास आश्रम है जो लक्ष्य सिद्धि की अन्तिम मंज़िल है।

इस प्रकार ये दो मार्ग परमोद्देश-सिद्धिके हुये। अब तीसरे वे हैं, जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके उसे ही सब कुछ मान बैठे। वे ही हमारे झांसी वाले मुसाफिर हैं। उनकी इतिश्री वहीं हो जाती है और बस!

इन पंक्तियों से ध्यान में आगया होगा कि इन दो मुख्य उद्देशों में कौनसा अधिक विशद, शिव और सुन्दर है।

भजन

नमो नमो वृन्दावन चन्द ॥ टेक ॥
आदि अनन्त अनादि एक रस,
पियप्यारी विहरत स्वच्छन्द ॥ १ ॥
सतचित आनन्द रूप राशी धन।
खग, मृग, द्रुम, बेलि और वृन्द ॥ २ ॥
भगवत रसिक निरन्तर सेवत।
मधुपभये पीवत मकरन्द ॥ ३ ॥

२

प्यारो लगे रघुवीर मोरी सजनी ॥ टेक ॥
कैसाक धनुषा कैसीक धनुषी।
कैसाक लछमन वीर मोरी सजनी ॥ १ ॥
छोटासा धनुषा छोटीसी धनुषी।
छोटासा लछमन वीर मोरी सजनी ॥ २ ॥
किस को सोहे केशरिया जामा।
किस को सोहे दखनि चीर मोरी सजनी ॥ ३ ॥
रामजी को सोहे केशरिया जामा।
सीयाजीको सोहे दखनि चीर मोरी सजनी ॥४॥
विश्वामित्र ने आज्ञादीनी है।
तुम भी चलो रघुवीर मोरी सजनी ॥ ५ ॥
राजा जनक के सभा जुरी है।
जिसमें विराजे दोउ वीर मोरी सजनी ॥ ६ ॥
संग की सहेलियों को सीता जी लेकर।
माला गले दई गीर मोरी सजनी ॥ ७ ॥

तुलसीदास आशरघुबर की ।
बहै प्रेम का नीर मोरी सजनी ॥ ८ ॥

३

शिव दानी विनती सुनो मेरी ॥ टेक ॥
काम क्रोध मद मोह सैन रिपु ।
रहत दिवस निशि घेरी ॥ १ ॥
सूकत नहिं घात अपनी में ।
हरत ज्ञान धन ढेरी ॥ २ ॥
बड़े २ दुखियन के दुःख हर के ।
दियो ऊंच पद हेरी ॥ ३ ॥
दीन २ इच्छा जन की है ।
देत न लावत देरी ॥ ४ ॥
सब ही प्रकार से हार मान के ।
कह्यो आप से टेरी ॥ ५ ॥
माधव शरण देवो गौरी युत ।
भक्ति चरण पद केरी ॥ ६ ॥

दोहा ४

राधे मेरी लाड़ली, मेरी ओर तू देख ।
मैं तोहि राखों नयन में काजर की सी रेख ॥
मैं बेटी वृष भानु की राधा मेरो नाम ।
तीन लोक में गाइये बरसानो नन्द गांव ॥
आउ पियारे मोहना पलक झांप तोहि लेऊं ।
ना मैं देखौं और को ना तहि देखन देऊं ॥
परे कठिन अहीर के नेक पीर पहिचान ।
तब मुख दर्शन कारणे छांडि दई कुलकान ॥
मोर मुकुट कटि काछनी पीतांबर बन माल ।
यह मूरति मम मन बसो सदा बिहारी लाल ॥
कर मुरली लकुटी गहे घंघरवारे केश ।
यह बानिक नयनन बसो श्याम मनोहर वेश ॥
मोहिनि मूरति श्याम की मो मन रही समाय ।
ज्यों मेहंदी के पात में लाली लखी न जाय ॥
मन मोहन मन मोहना मन मोहन मन माहिं ।
या मोहन ते सोहना तीन लोक में नाहिं ॥

५

एक रज रेणु पै चिन्तामणि वारि डारौं,
वारि डारौं विश्व सेवा कुञ्ज के विहार पै ।
लतन के पत्तन पै कोटि कल्प वारि डारौं,
रम्भा हु को वारि डारौं गोपिन के द्वार पै ॥
ब्रज की पनिहारिन पै शचि रचि वारि डारौं,
बैकुण्ठ हू वारि डारौं कालिन्दी की धार पै ।
कहै अभयराम एक राधाजू को जानत हौं,
देवन को वारि डारौं नन्द के कुमार पै ॥ १ ॥

६

राधे कृष्ण क्यों नहीं बोलो पीछे पछताओगे ॥टेक॥
जाने तो को जन्म दीयो, ताको नाम क्यों ना लीयो ।
यह तो मानुष देही बन्दे, फेर नहीं पाओगे ॥ १ ॥
तिरया और कुटुम्ब की खातर, पच २ मर जाओगे ।
माया तेरे संग न चाले, जग भरम गंवाओगे ॥ २ ॥
आवेंगे वे जमके दूत, पकर २ ले जावेंगे ।
तुम से मांगेंगे हिसाब प्यारे, क्या बतलाओगे ॥ ३ ॥
सूर प्रभु की शरण में आवो आवागमन मिटाओगे ।
श्री ठाकुर जी को ध्यान धरले पार लग जाओगे ॥४॥

७

भज मन श्री राधा गोपाल ॥ टेक ॥
गोल कपोल अधर बिम्बा फल लोचन परम बिशाल ।

शुक नासा भौं दूज चन्द्र सम अति सुन्दर है भाल।१
मुकट चन्द्र का शीशलसत है, घूंघरारे वर बाल।
रत्न जटित कुण्डल कर कंकण, गल मोतियन की माल।
पग नुपुर मणि खचित बजत जब चलत हंस गति चाल
गौर श्याम तनु बसन अमोलक कर महदी सौं लाल।२
मृदु मुसकान मनोहर चितवन बोलन अधिक रसाल।
कुंज भवन में बैठे दोऊ जन गावत अद्भुत ख्याल ।।४
नारायण या छवि को निरखत पुनि २ होत निहाल।

८

जय जय जुगल किशोर बिहारी ।। टेक ।।

जय निकुंज में अविचल जोरी,
जय मन मोहनी प्रीतम प्यारी।।
जय मुख चन्द्र चकोर परस्पर,
जय छवि सिन्धु रूप मन हारी ।।
जय ब्रज जीवन रसिक शिरोमणि,
महिमा अमित अपार विहारी ।।
जय भक्तन वश रहत निरन्तर,
नाना चरित करत सुख कारी ।।
भक्तराम निशिदिन यह याचत,
चरण कमल राखूं उर धारी ।।

९

प्रभु हौं सब पतितन को टीको ।। टेक ।।

और पतित सब दिवस चार के,
हौं तो जन्मत ही को ।। १ ।।
बधिक अजामिल गणिका तारी,
और पूतना ही को ।। २ ।।
कोऊन समरथ अघ करबे को,
खैंच कहत हूं लीको ।। ३ ।।
मरियत सूरदास पतितन में,
हम ते को है नीको ।। ४ ।।

१०

ब्रज रज मोहनी हम जानी ।। टेक ।।

मोहन कुञ्ज मोहन श्री वृन्दावन, मोहन यमुना पानी १
मोहनी नारी सकल गोकुल की, बोलत अमृत बानी २
श्रीभट के प्रभु मोहन नागर, मोहनी राधा रानी ।।३।।

११

ऐसो कब करि हैं मन मेरो ।। टेक ।।

कर करवा गुञ्जन के हरवा कुञ्जन मांहि सबेरो ।। १
ब्रज बासिन के टूक भूट अरु घर घर छाछ महेरो ।।२
भूख लगै तब मांग खायहैं गिनो न सांझ सबेरो ।। ३
इतनी आशा व्यास की पुजिये, मेरो गांवन खेरो ।। ४

१२

शरण गये प्रभु कोन उबारे ।। टेक ।।

जिव २ भीर परी भगतन पर चक्र सुदर्शन तहां सन्हारे ।।
महाप्रसाद बैठ अम्बरीष ही, दुर्वासा को कोप निवारे ।।
ग्राह ग्रसत राज को जल डूबत, नाम लेत प्रभुवाको दुःख टारे
सूर श्याम बिन करे और को, रंग भूमि में कंस पछारे ४

संसार समाचार।

इङ्गलैण्डमें एक निहत्थी लड़की है। वह अपनी आजीविकाके सारे काम पैरों द्वारा करती है। खाती भी है और लिख भी लेती है।

विलायतमें ६ पहियों की ऐसी मोटरें बनी हैं जो ऊबड़ खाबड़ जमीनमें चलती हैं।

इङ्गलैण्डके अखबारोंमें 'डेलीमेल' सबसे बढ़ा-चढ़ा है। उसके कोई ३० लाख ग्राहक हैं। विज्ञापनकी आमदनी लाखों रुपये रोजाना है।

विलायत में शौकीन औरतें अपने बाल कटवाने में ३० करोड़ सालाना खर्च करती हैं।

कहा जाता है कि जर्मनीमें हजार पीछे केवल १५ मनुष्य अशिक्षित हैं।

विलायतमें एक मनुष्यके गलेसे दो प्रकारका स्वर निकलता है। डाक्टरोंकी सभाने तय किया है कि उसके मरने पर पैंतालीस हजार रुपयेपर उसका गला खरीद कर जांच करायी जाय।

लन्दनमेंकर्नल फेरिजके पास ५५ सालसे १२० वर्ष का एक तोता है। शुरुमें यह सतारा और कोल्हापुरके राजाके पास था।

एक फ्रांसीसी विमान बनाने वाले ने एक नये चाल का जल-विमान निर्माण किया है। कहा जाता है कि उसकी चाल इतनी तेज है कि यदि तूफान के झमेले को न झेलना पड़े तो उस पर बैठ कर लोग अटलांटिक महासागर को पारकर युरोप से अमेरीका केवल दो ही दिन में पहुंच सकते हैं।

रसायन शास्त्रवेत्ताओं ने कमाल कर दिखाया। नई परीक्षा का फल निकला है कि गेहूं, मक्कई, ज्वार, बाजरा, धान आदिकी फसल की डण्डियों से ठीक रेशम की भांति का चमकदार सोफयाना कपड़ा तैयार हो सकेगा। यानी फसल से पेट भरा करेगा और उनकी डण्डियों से शरीर ढका करेगा।

अमेरिकाके मि० कर्ल नामक वैज्ञानिकने एक महा विचित्र आविष्कार किया है। आप एक कृत्रिम मनुष्य तयार करनेमें व्यस्त थे। आपका परिश्रम पूरा हो चला है। वेसरिंग हाउस बिजली कम्पनी ने एक कृत्रिम मनुष्य को प्रदर्शित किया है। यह मनुष्य प्रश्नों का उत्तर देता है और जो कहो करता है। कृत्रिम मनुष्यों में एकने दरवाजा खोलो कहनेसे दरवाजा खोल दिया। दूसरेने रोशनी जला दी। इस तरह तीसरे मनुष्यने अन्यकई जरूरी काम कर डाले। इस समय में उक्त कम्पनी में बजलीके तीन मनुष्य हैं। जिनको भिन्न २ कार्य सौंपे गये हैं। पहला जलाशयकी देख-भाल करता है। और जलाशयमें पानी की गहरायी की रिपोर्ट देता है। जलाशयकी ऊंचाईसे इस कृत्रिम मनुष्यका ऐसा सम्बन्ध है कि वह टेलीफोनकाभी काम करता है।

मैडेगास्टर में एक प्रकार का वृक्ष होता है, जिसे वहांके लोग यात्रियों का वृक्ष कहते हैं। उसकी प्रत्येक बड़ी १ पत्तीके डण्ठल के निकठ मीठा और ठण्डा जल बहता है। प्रत्येक पौधे में कम से कम चार पत्तियां होती हैं यानी एक गेलन पानी प्रत्येक वृक्षसे मिल सकता है। वहां के मनुष्य जब भूख और प्यास से बेचैन होते हैं तब पत्तेकी जड़में भाला मार कर छेद कर देते हैं, पानी उसमें से गिरने लगता है और वे उस के नीचे बर्तन लगा कर उसे भर लेते हैं।

निम्न लिखित महानुभावों ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राव साहब श्री वल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलजारबाग, पटना १०१)

२. राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला १०१)

३. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर १०१)

४. राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)

५. श्रीमान् राय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)

६. राव श्रीराम रईस नांगल २५)

७. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)

८. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)

९. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)

१०. बा० लक्ष्मणदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज पटना यू० पी०। २५)

११. श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्यूनिस्पल कमेटी पलवल। ११)

२. श्रीमती उमरावकौर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल ११)

३. महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)

४. बा० ब्रजलाल जी शिरस्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, झींद। ५)

५. राव बलवन्तसिंह जी मु० जैतपुर तहसील रेवाड़ी। ५)

६. श्रीमती सूरज देवी धर्म पत्नी चौ० जोरावरसिंह जी शिशन मन अलीगढ़। ५)

७. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)

८. श्रीमान् पं० नथराम जी शर्मा 'गौड़' क्लार्क इलाहबाद बैंक देहली। ५)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ॥)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य -)॥

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य ।-)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य -)।

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय है फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथावाचकों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ॥=) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संग्रह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संग्रह है। वेदान्त विषय की उत्तम कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य ।=)